मनोरंजन पुस्तकमाला-३१

संपादक

श्यामसुंदरदास बी. ए.

मुसलमानी राज्य का इतिहास

[illegible]रा भाग

लेखक

मन्नन द्विवेदी बी. ए.

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

मुसलमानी राज्य का इतिहास

दूसरा भाग

अस्त कांड

लेखक
मन्नन द्विवेदी बी. ए.

१९७६
केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट द्वारा
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में मुद्रित।

मूल्य १)

अध्याय सूची।

पृष्ठसंख्या

मुसलमानी राज्य का इतिहास।

दूसरा भाग।

अस्त कांड।

पहला अध्याय।

औरंगज़ेब।

शासन और विजय।

औरंगज़ेब सन् १६५६ ई० में तख़्त पर बैठा। आपने पहले खंड में देखा है कि किस निर्दयता से उसने गोत्रघात किया। जब तख़्त का कोई दावीदार न रहा, जब बूढ़ा बापशाहजहां क़ैदख़ाने में मर गया, तब औरंगज़ेब की तबिअत में इतमीनान हुआ। औरंगज़ेब में सब से ख़ास बात यह थी कि वह बड़ा ही कट्टर मुसलमान था। वह हिंदुओं को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। दारा पर ख़ास चार्ज यही

लगाया गया था कि वह हिंदूधर्म का पक्षपाती है। हालांकि दारा न तो हिंदू था और न हिंदूधर्म का पक्षपाती था। वह दयावान् राजकुमार केवल यह चाहता था कि हिंदुओं पर अत्याचार न हो, उनके धर्म में बाधा न पहुँचाई जाय। औरंगज़ेब इतना भी नहीं देख सकता था। अपनी दक्खिन की सूबेदारी में उसने एक ब्राह्मण को सिर्फ़ इसलिये मरवा डाला था कि उसने इसलाम की कुछ बातों का खंडन किया था। जिन लोगों ने अकबर की धार्मिक निष्पक्षता का वर्णन पढ़ा है और जो लोग आज न्यायी ब्रिटिश राज्य की धार्मिक स्वतंत्रता का भोग कर रहे हैं, उनको औरंगज़ेब की इस धार्मिक जड़ता से बड़ा दुख होगा।

ऐसे ही अन्यायी और अत्याचारी बादशाह के शासन का बोझ अभागे हिंदुओं पर पड़ा। तअस्सुब और तंगदिली पर औरंगज़ेब की बादशाहत की नींव पड़ी।

इतिहासलेखक कहते हैं कि औरंगज़ेब में बहुत से गुण ऐसे थे जो उसके पहले के मुग़ल बादशाहों में नहीं थे। वह न तो हुमाऊं की तरह रास्ता चलते शादी करता था, न अकबर की तरह मीना बाज़ार लगवाता था, वह जहांगीर की तरह तरुणी और वारुणी के नशे में भी चूर नहीं रहता था, शाहजहां की तरह विलास की वासना भी उसमें नहीं थी। औरंगज़ेब में शान शौकत बहुत कम थी, पहनने ओढ़ने और खाने पीने तक की उसको परवा नहीं रहती थी। वह

बहुत सादी पोशाक पहनता था और बहुत मामूली भोजन करता था। वह शराब न तो खुद पीता था और न और लोगों को पीने देता था। शराब की दुकानें बंद करवा दी गई थीं। भंग का पीना और बेंचना भी मना कर दिया था। जुआ खेलना रोक दिया गया था। वेश्याओं के विवाह करवा दिए गए थे। बादशाह समझता था कि संगीत से कामुकता और विलासिता बढ़ती है इसलिये दरबार का गाना बजाना बिल्कुल बंद कर दिया गया। गवैए बाहर कर दिए गए। बड़ों का अनुकरण करना लोगों में स्वाभाविक है। इसलिये दरबारी और रईसों ने भी गवैयों का अनादर किया। गान-विद्या लोप होने लगी। औरंगज़ेब की निंदा जगह जगह होने लगी। गवैयों ने बादशाह पर प्रभाव डालने के लिये एक जलूस निकाला। दिल्ली के एक हज़ार गवैए जुमे के रोज़ इकट्ठे हुए। बीस खूबसूरत तिकठियों को सरपर रखकर रोते कलपते ये लोग आगे बढ़े। यह हालत देखकर बादशाह ने इनके अफ़सोस की वजह पूछी। जवाब मिला कि गान-विद्या मर गई है उसी के गाड़ने की तैयारी है। बादशाह ने जवाब दिया कि मुर्दे को खूब अच्छी तरह गाड़ देना चाहिए।

बादशाहों का जन्म-दिन बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। लेकिन औरंगज़ेब ने इसको भी रोक दिया। उसकी सालगिरह पर सिर्फ़ ३ घंटे नौबत बजती थी और दरबारियों को पान सुपारी दी जाती थी। क़ायदा था कि रोज़ सुबह

बादशाह झरोखे पर बैठकर लोगों को दर्शन देता था। कुछ ऐसे भी पतित हिंदू थे जो दर्शन बिना पानी तक नहीं पीते थे।

औरंगज़ेब ने अपने राज्य के ११ वें साल में इस प्रथा को उठा दिया। क्लार्क लोग चांदी की दावातें काम में लाते थे। औरंगज़ेब के वक़्त में उनको मामूली दावातें दी गईं।

यह ज़रूर है कि उसने बड़ी निर्दयता से अपने भाई और भतीजों को मारा, बाप को क़ैद किया, लेकिन बादशाह होने पर उसने इसलाम के मुताबिक़ जहां तक मुमकिन था इंसाफ़ किया। अन्न सस्ता करने के लिये उसने चुंगी उठा दी। बंबई और सूरत के अँगेरज़ी व्यापारियों ने कहा था कि बादशाह न्याय का समुद्र है। रहन सहन देखने से वह फ़क़ीर मालूम होता था। सन् १६६५ ई० में जब दुमदार सितारा निकला था, औरंगज़ेब ने ४ हफ़्ते तक सिर्फ़ पानी और बाजरे की रोटी पर गुज़र किया था। बादशाह टोपी बनाकर बेंचता और उससे गुज़र करता था।

अपनी सरलता और सदाचार के कारण औरंगज़ेब मुसलमान बादशाहों में सर्वोत्तम होता, हिंदू उसको धर्मराज का अवतार मानकर पूजते। लेकिन तअस्सुब (धार्मिक पक्षपात) ने उसके सब गुणों पर पानी फेर दिया। जिनका मत उसके मत से नहीं मिलता था उनके मुक़ाबिले में न्यायी और सदाचारी औरंगज़ेब घोर अन्यायी और दुराचारी हो

जाता था। उसके जीवन का इतिहास हिंदुओं पर किए गए अत्याचारों का इतिहास है। हिंदू किस तरह मारे और सताए गए, किस तरह उनके मंदिर तोड़े गए, इसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। जिन मुसलमानों का औरंगज़ेब से धार्मिक मतभेद था उन पर भी घोर अन्याय किए गए थे। इन अन्यायों का बयान भी दूसरे स्थान पर किया जायगा।

औरंगज़ेब के शासन के वर्णन के पहले उसके परिवार और अफ़सरों के विषय में कुछ लिखकर उसकी फ़तहयाबियों का बयान किया जायगा। शाहजहां के क़ैद होने और मरने का हाल आप पढ़ चुके हैं। दारा, मुराद और शुजा के जीवन के अंतिम दृश्य आप अवलोकन कर चुके हैं। एक एक करके सब भतीजे भी ख़तम कर दिए गए थे। औरंगज़ेब की बहनों में जहांनारा बेगम और रौशनारा बेगम प्रसिद्ध हैं। औरों के विषय में कोई बात महत्त्व की नहीं है। आप जानते हैं कि जहांनारा बेगम अपने बाप शाहजहां और बड़े भाई दारा की तरफ़दार थी। शाहजहां के वक़्त में वह रनिवास की स्वामिनी थी और राजप्रबंध में भी उसका बड़ा अधिकार था। दारा को वह बहुत मानती थी। दारा आदमी भी ऐसा ही था कि लोग उसका आदर करें। दोनों के धार्मिक विचार एक थे। जहांनारा दारा को अपना गुरू मानती थी। दोनों ने मिलकर अपने गुणों और पितृभक्ति से शाहजहां को अपने हाथ में कर लिया था।

दारा को बादशाह बनाने के लिये जहांनारा ने बड़े बड़े यत्न किए थे, औरंगज़ेब को उसने बहुत समझाया था। लेकिन न तो दारा सा नेक और विद्वान् राजनीति की कुटिल चालों में औरंगज़ेब से पेश पा सकता था और न औरंगज़ेब धर्मशास्त्र के पचड़े में पड़कर अपना काम बिगाड़नेवाला आदमी था। दारा पराजित और अपमानित हुआ, बड़ी क्रूरता से उसका सर धड़ से अलग किया गया। शाहजहां आगरे के क़िले में क़ैद हुआ। देवी जहांनारा ने जैसे सुख के दिनों में आनंद भोग किया था वैसे ही दुख के अवसर में उसने आपत्ति का पहाड़ सर पर उठाकर पितृदेव की सेवा की। निर्दयी विधाता से इतना भी नहीं देखा गया। जेल का कष्ट भोगते हुए शाहजहां ने संसार से कूच किया। जहांनारा का अब इस जगत् में कोई सहारा नहीं रह गया। इतनी बात ज़रूर थी कि उसने अपने विभव के दिन में भी किसी का अहित नहीं किया था इसलिये वह आशा कर सकती थी कि इस कलियुग में भी निष्कारण उसको कष्ट नहीं पहुँचाया जायगा। शाहजहां के मरने पर जब औरंगज़ेब ने क़िले में प्रवेश किया, जहांनारा ने उसका बड़ा आदर किया। औरंगज़ेब ने भी सोचा होगा कि जिन लोगों के लिये जहांनारा कोशिश करती थी और कर सकती थी वे अब संसार में नहीं रहे। ऐसी दशा में उसको किसी तरह की तकलीफ़ देना बे-मतलब और ख़िलाफ़ मसलहत होगा।

नतीजा यह हुआ कि दोनों ने पुरानी बातों को भुला दिया। जहांनारा ने समझा कि औरंगज़ेब उसके बाप का क़ैद करनेवाला दुश्मन नहीं बल्कि दिल्ली का शाहंशाह और उसका सगा भाई है। औरंगज़ेब ने समझा कि वह उसके दुश्मन दारा के साथ साज़िश करनेवाली मशहूर जहांनारा बेगम नहीं है बल्कि विपत् की मारी और अभाग्य की सताई वह उसकी सौतेली नहीं सगी बहन है। क़ैद में शाहजहां के पैरों पड़कर उसने तीन बार औरंगज़ेब के लिये क्षमा-प्रार्थना की। शाहजहां पुरुष था, उसका हृदय उतना कोमल नहीं था, इसलिये उसने दो दफ़े इनकार किया। लेकिन प्यारी पुत्री के निवेदन को वह अंत में न टाल सका। कलेजा कड़ा करके टूटे फूटे शब्दों में उसने औरंगज़ेब को क्षमा किया। ऐसी दयावती देवी के साथ औरंगज़ेब सा क्रूर हृदय भी निष्कारण कठोरता का वर्ताव नहीं कर सकता था। औरंगज़ेब ने बहन की इज़्ज़त की और वह फिर रनिवास की स्वामिनी बनाई गई। हुक्म हुआ कि अफ़सर, दरबारी और अमीर आगरे के क़िले में बाहर से उसको सलाम करें। उसकी पेंशन १७ लाख रुपए सालाना कर दी गई। अक्टूबर सन् १६६६ ई० में वह आगरे से दिल्ली चली आई। अलीमर्दनखां की कोठी उसके रहने के लिये मिली। वहां औरंगज़ेब अकसर उससे मिलने जाता था और दोनों में घंटों बातें होती थीं। सन् १६६६ ई० में जहांनारा ने अपने घर से दारा की लड़की

जहांज़ेबबानू की शादी औरंगज़ेब के तीसरे लड़के मुहम्मद आज़म से की। बेगम साहब ने मुराद की लड़कियों की भी परवरिश की थी। सुलेमानशिकोह की लड़की सलीमाबानू की शादी औरंगज़ेब के लड़के मुहम्मद अकबर से हुई। बेगम साहब अकसर औरंगज़ेब को नसीहत भी दिया करती थीं। तारीख़ ६ सितंबर सन् १६८१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। बादशाह ने तीन रोज़ तक रंज मनाया। हुक्म दिया गया कि जहांनारा बेगम के नाम के साथ सरकारी काग़ज़ात में 'साहिबतुज़्ज़मानी' का लक़ब लगाया जाय। बेगम साहब के मरने से विद्या, दया, सुशीलता, सहनशीलता और पितृ-भक्ति का एक बड़ा भारी समूह संसार से उठ गया। वैभव के दिन में, शाहजहां के ज़माने में, जब सारी सल्तनत उसकी मुट्ठी में थी तब भी उसने किसी को अनुचित हानि नहीं पहुँचाई। कारागार का दुख भोगते हुए उसने न तो शोक प्रकाशित किया और न अनुचित नम्रता दिखलाई। औरंगज़ेब की सब क्रूरताओं को भूलकर उसने पिता से उसको क्षमा-दान कराया। औरंगज़ेब के हाथों से फिर पहला अधिकार पाकर भी उसने बड़ा ही साधारण जीवन व्यतीत किया। संसार में ऐसी गंभीर आत्माएं बहुत कम आती हैं और जब आती हैं तो दुखियों का बहुत कुछ कष्ट हर लेती हैं।

औरंगज़ेब की दूसरी बहन रौशनारा बेगम में न तो बड़ी बहन की विद्या थी और न उसके उच्च विचार थे। जहांनारा

जिस तरह दारा का साथ देती थी, रौशनारा उसी तरह औरंगज़ेब का साथ देती थी। अंतर इतना ही था कि बड़ी बेगम ने अपने को उदारता के ऊँचे आदर्श से कभी नहीं गिराया लेकिन रौशनारा औरंगज़ेब की सहायता में औरंगज़ेब से भी नीच हो गई थी। दारा के क़त्ल किए जाने में सब से अधिक हाथ रौशनारा बेगम का था। इससे अधिक नीचता और क्या हो सकती है। सिंहासन मिलने पर औरंग-ज़ेब ने इस प्यारी बहन को पांच लाख रुपए भेंट दिए। रौशनारा का मान जान भी बहुत था। लेकिन "नल-बल जल ऊंचो चढ़ै बहुरि नीच को नीच।" जहांनारा बेगम का आदर हुआ और रौशनारा का स्थान उसको मिल गया। बर्नियर का कहना है कि उसके अनुचित प्रेम का पता पाकर औरंगज़ेब रुष्ट हो गया। एक पुर्तगाली औरत ने बर्नियर से यह वृत्तांत कहा था। वह औरत शाही ज़नाने में बहुत दिनों तक रहती थी और वहां की अधिकांश बातों का उसका सच्चा अनुभव था। तिस पर भी मुग़लों के हिमायती इति-हासलेखकों ने इस बात को अलिफ़लैला की कहानी समझकर उड़ा दिया है। ईश्वर करे कि बर्नियर की बात झूठी हो। लेकिन कोई वजह नहीं मालूम होती है कि क्यों पुर्तगाली औरत ने इतनी निर्मूल कहानी गढ़ ली। एक विलासी मांसाहारी बाद-शाह की पेश में पाली हुई, जवान और अविवाहिता लड़की से आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की आशा नहीं की जा सकती है।

२

मई सन् १६६२ ई० में औरंगज़ेब सख़्त बीमार पड़ा था। बीमारी के दिनों में रौशनारा बेगम ने बड़ी धींगा धींगी मचा दी थी। औरंगज़ेब के लड़के आज़म को तख़्त पर बैठाने के लिये वह तैयारियां कर रही थी। उसने सल्तनत का कुल काम अपने हाथ में ले लिया था। शाही मुहर की मदद से वह अपने हाथ से हुक्म निकालती थी। रौशनारा बेगम और उसके दोस्तों के सिवाय दूसरा आदमी बादशाह के पास नहीं जाने पाता था। खुद बादशाह की बेगम नवाब बाई ज़बरदस्ती निकलवा दी गई। उसके सर के बाल पकड़कर खींचे गए थे। बीमारी से छुटकारा पाने पर औरंगज़ेब रौशनारा से बहुत नाराज़ हुआ, वह उसकी नज़रों से उतर गई। उसके बाद उसके विषय में कोई प्रसिद्ध बात नहीं हुई। तारीख़ ११ सितंबर सन् १६७१ ई० में रौशनारा बेगम का ५६ वर्ष की अवस्था में देहांत हो गया। कहते हैं कि उसके मरने के बाद औरंगज़ेब ने उसकी आत्मा के सुख के लिये बहुत ख़ैरात की।

औरंगज़ेब की लड़कियों में सब से बड़ी और मशहूर ज़ेबुन्निसा थी। अरबी और फ़ारसी विद्या में उसकी अच्छी योग्यता थी। उसने मुसलमानी धर्मग्रंथों को खूब देखा था और फ़ारसी कवियों की खूबी को वह अच्छी तरह समझती थी। वह खुद भी अच्छी कविता करती थी। मख़फ़ी के नाम से उसने एक अच्छा कविता-ग्रंथ लिखा था। मख़फ़ी

उसका तख़ल्लुस (उपनाम) था। इस दीवान की कविता की बड़ी प्रशंसा है।

ज़ेबुन्निसा की पहली शिक्षा मैयाबाई नाम की दाई से हुई थी। बड़ी होने पर मरियम नाम की स्त्री उसके पढ़ाने के लिये नियत की गई। मरियम हाफ़िज़ा थी। उसके संसर्ग से ज़ेबुन्निसा ने भी क़ुरान कंठस्थ कर लिया। ज़ेबुन्निसा अक्षर बहुत पुष्ट और सुडौल लिखती थी।

ज़ेबुन्निसा बेगम जिस तरह खुद विद्यावती थी वैसे ही विद्वानों का सत्कार भी करती थी। उसको ४ लाख रुपए सालाना ख़र्च के लिये मिलते थे। उसमें से अधिकांश साहित्य-सेवा में व्यय होता था। उसके मकान पर कवि कोविदों की अच्छी भीड़ रहती थी। अनेक विषयों पर अच्छे अच्छे ग्रंथ लिखने के लिये लोग नौकर रखे गए थे। एक पुस्तकालय भी खोला गया था जहां ग्रंथों का अच्छा संग्रह था।

कहते हैं आक़िलख़ां नाम के एक दरबारी से उसका अनुचित प्रेम था। विद्वान् लेखकों ने बड़ी बड़ी दलीलों से इस बात का खंडन किया है। न तो किसी स्वदेशी इतिहासलेखक ने इस प्रेम का वर्णन किया है और न टैवर्नियर, बर्नियर और मनूची ने इस बात का ज़िक्र किया है। ऐसी दशा में यह प्रेम-कहानी १९ वीं सदी के कुछ उर्दू-लेखकों की रचना मालूम होती है। जैसे उर्दू उपन्यास-कारों ने आक़िलख़ां की कहानी गढ़ी है वैसे ही किसी

हिंदी उपन्यासलेखक ने ज़ेबुन्निसा के साथ छत्रपति शिवाजी को बदनाम किया है । इतिहास के पाठकों को ऐसे लोगों से सचेत रहना चाहिए।

औरंगज़ेब की दूसरी लड़की शाहज़ादी ज़ीनतुन्निसा ने कुमारी रहकर अपना समय बिताया। उसकी मसजिद का नाम है कुमारी मसजिद । आख़ीर दिनों में उसने औरंग-ज़ेब की बड़ी सेवा की । अब तक क़ायदा था कि मुग़ल शाही ख़ानदान की लड़कियां कुँवारी रहकर मर जाती थीं। लेकिन औरंगज़ेब ने शादी करने का तरीक़ा जारी किया । उसने अपनी दो लड़कियां मिहरुन्निसा और जब-दुतुन्निसा की शादी कर दी थी । एक तीसरी लड़की बदरु-न्निसा की भी शादी होने को थी लेकिन ब्याह के पहले वह मर गई।

क़ैदी शाहजहां ने शाप दिया था कि औरंगज़ेब के लड़के उसके साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे जैसा उसने खुद अपने बाप के साथ किया । कुछ तो बूढ़े बाप की इस बद्दुआ का ख़्याल करके, कुछ अपने पापों के स्मरण से और सब से बढ़कर अपनी शकी तबिअत की वजह से वह हमेशा चौकन्ना रहता था। अपनी चालाकी की बदौलत वह शाहजहां की तरह क़ैद तो नहीं किया जा सका लेकिन लड़कों से उसको भी बेहद तकलीफ़ मिली । आप देख चुके हैं कि उसका सब से बड़ा बेटा मुहम्मद सुल्तान सन् १६५९ ई०

में शुजा से मिल गया था। आठ महीने के बाद वह वापस आया और ग्वालियर के क़िले में क़ैद हुआ। १२ वर्ष तक वह वहीं जेल का कष्ट भोगता रहा। उसकी ग़ैरहाज़िरी में मुहम्मद मुअज़्ज़म को युवराज का दरजा मिला था। किसी कारण से मुअज़्ज़म भी पिता को प्रसन्न न रख सका। उसको दंड देने के लिये मुहम्मद सुल्तान ग्वालियर से वापस बुलाया गया। बादशाह ने उसको अपने पास बुला कर उसका क़सूर माफ़ किया। उसके मंसब और पेंशन वापस मिले। उसकी बहुत सी नई शादियां की गईं। उसको आज़ादी के साथ साथ वलीअहद का दरजा मिल गया। उम्मीद की जाती थी कि औरंगज़ेब के बाद वह बादशाह होगा। लेकिन तारीख़ ३ दिसंबर सन् १६७६ ई० में उसका देहांत हो गया।

मुहम्मद सुल्तान के मरने पर मुअज़्ज़म राज्य का अधिकारी हुआ। पहले पहल सन् १६६३ ई० में २० वर्ष की अवस्था में मुअज़्ज़म दक्खिन का सूबेदार नियत हुआ जहां उसने १० वर्ष तक काम किया।

सन् १६७८ ई० में लोगों ने बादशाह का दिल उसकी तरफ़ से बिगाड़ दिया था। कहा गया था कि शाहज़ादा बादशाह के हुक्म के ख़िलाफ़ अपने मन का काम कर रहा है। शाहज़ादा की मा नवाबबाई बेगम उसको समझाने के लिये भेजी गई। उसको तंबीह करने के लिये एक दरबारी

भी भेजा गया था। तहक़ीक़ात से शिकायत झूठी साबित हुई। लेकिन औरंगज़ेब के दिल में जब शक पैदा हो गया, उसका मिटना बड़ा मुश्किल था। मुअज़्ज़म सन् १६७३ ई० में दक्खिन से वापस बुला लिया गया। तीन वर्ष तक उसके दुख की घड़ी थी। सन् १६७६ ई० में मुहम्मद सुल्तान के मरने पर वह फिर युवराज हुआ। फिर उसका आदर हुआ। उसी सन् में उसको शाह आलम का ख़िताब भी मिला। सेनापति बनाकर वह अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। सन् १६७८ ई० में वहां से वापस आने पर कुछ दिन तक वह दरबार में रहा। सितंबर सन् १६७८ ई० में वह डेढ़ बरस के लिये फिर दक्खिन में भेजा गया था लेकिन कामयाब न रहा। राजपूत-युद्ध में भी वह लड़ता रहा। जब औरंगज़ेब दक्खिन गया, शाह आलम भी उसके साथ था। कहना यह है कि वह सब तरह से अपने पिता का कृपापात्र था लेकिन "युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं"। लोगों ने उसकी खूब शिकायत की। नतीजा यह हुआ कि वह अपने लड़कों के साथ तारीख़ २० फ़रवरी सन् १६८७ ई० में क़ैद कर लिया गया। औरंगज़ेब ने उसकी प्यारी स्त्री नूरुन्निसा बेगम का अपमान कराया। उसको गालियां दिलाई गईं। उसकी आज़ादी छीन ली गई। धन दौलत ज़ब्त कर लिया गया।

कुछ दिन के बाद औरंगज़ेब का दिल फिरा। उसने धीरे

धीरे क़ैदख़ाने की सख़्ती कम करते करते तारीख़ ६ मई सन् १६६५ ई० में शाह आलम को आज़ाद कर दिया। वह मुल्तान भेजा गया और वहां से सूबेदार बनाकर अफ़ग़ानिस्तान रवाना किया गया । शाह आलम वैसे भी बहादुर नहीं था। लेकिन इस तरह लगातार सताए जाने से उसकी हिम्मत और भी टूट गई । उसने समझा क़ैद होने से बिहतर है कि किसी तरह खुशामद करके बादशाह को राज़ी रखे। औरंगज़ेब को खुश रखते हुए वह अपने बीवी बच्चों में चैन से दिन काटता था । दिन तो कटता जाता था लेकिन उसके कादरपने की शिकायत चारों तरफ़ होने लगी। बादशाह खुद उसको बुज़दिल समझने लगा।

शाहज़ादा मुहम्मद आज़म शाह आलम की कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाना चाहता था । यह बड़ा घमंडी और गुस्ताख़ था । औरंगज़ेब के सामने भी ग़ुस्सा और बदज़बानी करते हुए उसे डर नहीं लगता था । औरंगज़ेब इसको मानता था इसी लिये वह और सर चढ़ गया था। इलाहाबाद के सूबेदार मीरखां के उसकाने से आज़म ने बादशाहत हासिल करने का हौसला किया । बादशाह ने नाराज़ होकर मीरख़ां को बरख़ास्त करके उसका माल ज़ब्त कर लिया । आज़म से संभल की फ़ौजदारी ले ली गई। इतने बड़े क़सूर के लिये इतने सख़्त आदमी के हाथों से यह बहुत कम सज़ा थी । औरंगज़ेब का लड़का आज़म

सब से अधिक भाग्यवान् था क्योंकि सब से ज़्यादा गुस्ताख़ होने पर भी बादशाह उसको मानता था। कई सूबों की सूबेदारी करने के बाद सन् १६८१ ई० में आज़म को शाही आलीजाह का ख़िताब मिला और वह दक्खिन का सूबेदार बनाया गया। शाह आलम की क़ैद की हालत में वलीअहद का दरजा आज़मशाह को मिला था। जब शाहआलम को क़ैद से छुटकारा मिला, सन् १६९५ ई० के ईद के दिन आज़म से उसका झगड़ा हुआ। लड़ाई इस बात की थी कि बाप के दाहने बग़ल कौन बैठेगा। बादशाह ने ख़ुद शाह आलम को अपने दाहने तरफ़ बैठाया। आज़म बाद में आया। आकर उसने अपने बड़े भाई का हाथ पकड़ा और पकड़कर उसको उठाना चाहा। वह चाहता था कि शाह आलम को उठाकर ख़ुद बादशाह के दाहने बैठ जाय। बादशाह ने आज़म को खींचकर अपने बाएं तरफ़ बैठा लिया। उसके बाद आज़म ने किसी तरह का झगड़ा नहीं किया। सन् १६८३ ई० में उस पर बलवा करने की झूठी तुहमत लगी थी जिससे उसको बड़ी तकलीफ़ हुई। बादशाह ने उसको समझा बुझाकर ख़ुश किया। औरंगज़ेब के लड़कों में खुलकर बग़ावत करनेवाला था मुहम्मद अकबर। शाहज़ादा अभी एक महीने का बच्चा था कि उसकी मा मर गई। इस वजह से बादशाह उसको बहुत मानता था। शाही ख़ानदान के सब लोग उसको मानते थे। उसको सब से

ज़्यादा प्यार करती थी उसकी बड़ी बहन ज़ेवुन्निसा वेगम। वह उसको अपने प्राण से अधिक चाहती थी। भाई के लिये उसने बाप को नाराज़ करके बहुत कष्ट उठाया। १५ वर्ष की अवस्था में दारा की पोती से शाहज़ादे की शादी हुई। ४ वर्ष के बाद वह सूबेदार बनाया गया। सन् १६७६ ई० में वह अपने बाप के साथ राजपूत युद्ध में गया। इसी मौक़े पर लोगों ने बहकाकर उसको बाप से बाग़ी कर दिया। पिता पुत्र में बहुत दिन तक पत्र-व्यवहार हुआ। औरंगज़ेब अपने बाग़ी बेटे को पितृभक्ति सिखलाता था और अकवर अपने बाप की करतूतों का चित्र खींचकर दिखलाता था। शाहज़ादा ने साफ़ साफ़ लिख दिया कि जो खुद अपने बूढ़े बाप को क़ैद में सड़ा सड़ाकर मारता है उसको अपने लड़कों से फ़र्मां-बरदारी की उम्मीद करने का कोई हक़ नहीं है। उनके पत्र के नमूने दिए जायँगे जिससे पता चलेगा कि अपने बूढ़े बाप के चिढ़ाने के लिये औरंगज़ेब ने जो दलीलें पेश की थीं, अकवर उन्हीं को खुद उसके ख़िलाफ़ पेश करता था। अंतर इतना था कि औरंगज़ेब ने पहले शाहजहां को पिंजड़े में बंद कर लिया था तब उस पर वाक्य-बौछार डाली थी। मूर्ख अकवर ने तख़्त पर बैठे हुए ज़ालिम बाप बादशाह को चिढ़ाया। बाप के दुश्मन बादशाह औरंगज़ेब का इस दुनिया में कोई कुछ नहीं कर सकता था मरने पर चाहे कुछ भी हो। लेकिन अक-बर जिस बाप को चिढ़ा रहा था वह तख़्त पर बैठा हुआ

ताक़तवर बादशाह था, जीता जागता शेर था । उससे बग़ावत करने का जो नतीजा हो सकता है वही अकबर को मिला।

जब औरंगज़ेब को मालूम हो गया कि अकबर राजपूतों से मिल गया, उसने छल से काम लिया। उसने अकबर के नाम झूठी चिट्ठी लिखी जिसमें यह दिखलाया गया था कि शाहज़ादा अपने बाप की राय से राजपूतों को धोखा देने के लिये उनसे मिल गया है । चिट्ठी इस तरह भेजी गई कि वह राजपूतों के हाथ में पड़ी । सम्मुख लड़नेवाले बहादुर राजपूत छल-नीति में बिल्कुल कोरे थे। उनको मालूम हुआ कि अकबर उनका शत्रु है न कि मित्र। रातोरात राजपूत सेना चलती हो गई। प्रातःकाल अकबर उठता है तो कहीं कोई नहीं। औरंगज़ेब कामयाब रहा । बाद में वीर राठौर दुर्गादास को असलियत का पता लग गया । वह झपटकर अकबर से आ मिला।

दुर्गादास की सहायता से अकबर महाराज शिवाजी के पुत्र श्रीशंभाजी के दरबार में पहुँचा । महाराज ने शाहज़ादे का अच्छा सत्कार किया। इसी बीच में औरंगज़ेब ने अकबर के नाम पत्र लिखा जिसमें प्रेम दिखलाते हुए उसने लिखा है—

"खुदा जानता है कि मैं तुमको अपने सब लड़कों से अधिक प्यार करता हूं । लेकिन तुम अपनी बदक़िस्मती की वजह से मुजस्सिम शैतान राजपूतों के फंदे में पड़कर

वहिश्त की बरकतें छोड़कर दर दर भटक रहे हो। मैं क्या दवा कर सकता हूं, क्या इमदाद दे सकता हूं? मेरा दिल रंज में डूब गया जब मैंने सुना कि तुम मुसीबतें भोगते हुए बरबादी और परेशानी के सताए हुए भटक रहे हो। किन किन बातों का ज़िक्र करूं! जब ज़िंदगी तक मुझे भारी हो रही है। अफ़सोस सद-अफ़सोस! अगर अपने रुतबे का ख़्याल छोड़ा तो अपनी चढ़ती जवानी, बीवी और बच्चों पर तो रहम करता! ऐसा न करके तुमने अपने को राजपूतों के हाथों में डाल दिया जिनकी शक्ल हैवान की है और दिल भी हैवानी है। तुम पोलो के गेंद की तरह इधर उधर ठोकरें खाते फिर रहे हो। खुदावंद ताला ने हरएक बाप के दिल में क़ुदरती मुहब्बत पैदा की है, बावजूद तुम्हारे गुनाहों के मैं नहीं चाहता कि तुमको सज़ा दी जाय। बीती हुई बातों का ख़्याल छोड़ दो। अब भी अगर तुम्हारी क़िस्मत काम करे तो गुनाहों के लिये तोबा करो। तुम्हारी तकलीफ़ दूर होगी। तुम्हारे साथ मिहरबानी दिखलाई जायगी। तुम एक दफ़ा भी मेरे सामने आ जाओगे तो तुम्हारी बदनामी मिट जायगी। यशवंतसिंह ने दारा की मदद की लेकिन ज़िल्लत और बरबादी के सिवाय और क्या नतीजा हुआ! समझ रखो! खुदा तुमको अक़्ल दे, अब भी तुम ठीक रास्ते पर आओ।

शाहज़ादा अकबर ने जवाब दिया—

"×××××××××××× हज़ूर ने लिखा है कि यशवंत दारा के साथ था लेकिन दारा की बरबादी हुई, इसलिये इस झूठी क़ौम राजपूत का यक़ीन नहीं करना चाहिए। ×××× अगर दारा राजपूतों के कहने पर चला होता तो जो बातें हुईं वे कभी नहीं होतीं । शाहंशाह अकबर और दूसरे शाहंशाहों ने इसी क़ौम की मदद से हिंदुस्तान पर बादशाहत की थी। ××× भला हो इस क़ौम का। इस क़ौम की नमकहलाली और फ़र्मांबरदारी की तारीफ़ है कि यह अपने मालिक के बच्चों के लिये अपनी जान न्यौछावर करने को तैयार रहती है। ×××× हज़ूर के राज में वज़ीरों को कोई अख़्तियारात नहीं दिए गए हैं, शरीफ़ों का एतबार नहीं है, सिपाही भूखों मर रहे हैं, मुसन्निफ़ बेरोज़गार हैं, तिजारत पेशा बिला हैसियत और बेरोज़गार हैं। किसान कुचले जा रहे हैं। ×××××× ख़ानदानी रईस और फ़र्मां-बरदार नौकर निकाल दिए गए। राय देने का काम मिला है जुलाहे, धुनिए, दरज़ी और दूसरे कमीने लोगों को। ××× ऐसी सूरत में जब हज़ूर के सुधरने की कोई उम्मीद नहीं रही, मैंने मुनासिब समझा कि खुद बुराइयों को दूर करूं। ××× कितनी खुशी की बात होगी कि हज़ूर को खुदा ऐसी नसीहत दे कि हज़ूर सल्तनत का काम इस नाचीज़ लड़के के हाथ में छोड़कर मक्के शरीफ़ तशरीफ़ ले जायँ। ऐसा करने से सारी दुनिया हज़ूर की तारीफ़ करेगी। अब तक

हुज़ूर ने दुनियावी चीज़ों की तलाश में दिल लगाया। दुनिया के ऐशो आराम ख़्वाब ग़फ़लत की तरह हैं, बमिस्ल साया हैं। अब वक़्त है कि आइंदा दुनिया की तैयारी करें और उन गुनाहों के लिये माफ़ी हासिल करें जिनको हज़ूर ने अपने वालिद माजिद को क़ैद करके और शरीफ़ भाइयों को क़त्ल करके किया है। ××× हज़ूर ने जो मेरे हाज़िर होने की बाबत फ़र्माया है उसकी बाबत यह अर्ज़ है कि उसकी तामील में मुझको ख़ौफ़ मालूम होता है जब मैं उस बर्ताव पर ग़ौर करता हूं जो हज़ूर ने अपने बाप और भाइयों के साथ किया है। ×××"

शंभाजी के यहां से अकबर बंबई में युरोपियन लोगों के पास गया। वहां से जहाज़ पर ईरान गया। शाह फ़ारस ने शाहज़ादे की ख़ातिर की लेकिन बाप बेटे की लड़ाई में मदद देना उसने मुनासिब नहीं समझा। शाह ने इतमीनान दिलाया कि औरंगज़ेब के मरने के बाद भाइयों की लड़ाई में वह अकबर की मदद करेगा। अकबर के लिये अब और कोई चारा नहीं रहा। वह बैठ कर अपने बाप के मरने के लिये प्रार्थना करने लगा। लेकिन वह सन् १७०४ ई० में अपने बाप से ३ बरस पहले मर गया। औरंगज़ेब के चारों लड़कों का संक्षिप्त वर्णन किया गया। अब उसके वज़ीरों और अफ़सरों का हाल लिखा जायगा।

मुसलमान बादशाहों के दरबार में एक वज़ीर आज़म होता था जिसकी मातहती में बहुत से दीवान रहते थे जिनमें एक एक के ज़िम्मे एक एक सीग़ा रहता था। वैसे तो वज़ीर आज़म को बादशाह के बाद सल्तनत का पूरा अख़्तियार था लेकिन कभी कभी दीवान का काम भी उसको दे दिया जाता था। मुसलमानी ज़माने में हिंदू दीवान बहुत से हो गए हैं लेकिन किसी हिंदू वज़ीर आज़म का होना पाया नहीं जाता है।

तारीख़ ७ जुलाई सन् १६५६ ई० में मीर जुमला वज़ीर आज़म मुक़र्रर हुआ। लेकिन ५ महीने के बाद वह दक्खिन में युद्ध के लिये चला गया और उसकी जगह पर उसका लड़का मुहम्मद अमीनख़ां नायब की हैसियत में काम करने लगा। लेकिन उस वक़्त दारा की चलती थी। वह कब चाहता कि उसके दुश्मन औरंगज़ेब का साथी इस बड़े उहदे पर रहे। उसने शाहजहां के हुक्म से मीर जुमला को मंत्री पद से हटा दिया। जाफ़रख़ां उसकी जगह पर मुक़र्रर हुआ। नायब दीवान रघुनाथ खत्री माल के सीग़े का काम करता रहा। रघुनाथ बड़ा ही लायक़ और ईमानदार अफ़सर था। माल के मुहकमे में जहां और लोग मालामाल हो जाते थे रघुनाथ ने कभी बेईमानी का पैसा छुआ तक भी नहीं। वह सदा बेईमानी रोकने की कोशिश करता रहा। उसके देखते देखते किसानों का अनभल नहीं होने पाता था। पहले पहल

वज़ीर सादुल्लाहखां ने रघुनाथ के गुणों को पहचाना और उसको माल के सीग़े में नौकर किया। बढ़ते बढ़ते रघुनाथ नायब दीवान हो गया। दीवानी का दरजा उसको नहीं मिला लेकिन बहुत दिनों तक वह दीवानी का भी काम करता रहा। बादशाह होने पर औरंगज़ेब ने रघुनाथ को बदस्तूर उसके दरजे पर क़ायम रखा और राजा का ख़िताब भी दिया। सन् १६६३ ई० में सुयोग्य राजा रघुनाथ का देहांत हो गया। बादशाह होने पर बहुत दिन तक औरंगज़ेब ने कोई वज़ीर नहीं मुक़र्रर किया। जगह मीर जुमला के लिये ख़ाली रखी गई। लेकिन मीर जुमला के वापस आने की नौबत नहीं आई। दौलताबाद से रवाना होते हुए शुजा का पीछा करने के लिये वह बंगाल चला गया। वहीं मार्च सन् १६६३ई० में उसका देहांत हो गया।

मीर जुमला के मरने पर फ़ाज़िलखां वज़ीर मुक़र्रर हुआ। यह बड़ा ही सदाचारी और विद्वान् अफ़सर था। शाहजहां इसको बहुत मानता था। योग्यता के कारण औरंगज़ेब ने भी इसकी ख़ातिर की लेकिन इस नए बादशाह का आदर उसने बहुत थोड़े दिन तक भोगा। तारीख़ ७ जनवरी सन् १६६३ ई० में वह वज़ीर मुक़र्रर हुआ था और १६ दिन बाद तारीख़ २३ जनवरी को दुनिया से कूच कर गया। उसी सन् में अगस्त के महीने में जाफ़रखां वज़ीर आज़म मुक़र्रर हुआ और तारीख़ ६ मई सन् १६७० ई० तक इस पद पर

रहा। शाहजहां की बीवी मुमताज़महल बेगम की बहन से जफ़रखां का ब्याह हुआ था। इस कारण से इस वज़ीर की बड़ी प्रतिष्ठा थी। खुद शाहंशाह शाहजहां इसके घर आते जाते थे। औरंगज़ेब ने पहली दफ़ा जब इसको मंत्री पद से हटाया था, तो मालवा का सूबेदार बनाया था। लेकिन विवश होकर औरंगज़ेब ने योग्यता स्वीकार की और जफ़रखां को प्रधान मंत्री पद दिया।

जफ़रखां बड़ा ही दयावान् और विद्वान् आदमी था। लेकिन उसमें शराब पीने की खराब आदत पड़ गई थी। औरंगज़ेब ने उसको कई बार समझाया लेकिन वृद्धावस्था में स्वभाव का अचानक बदल देना आसान नहीं था। औरंगज़ेब अकसर वज़ीर के घर आया जाया करता था। तारीख ६ मई सन् १६७० ई० में वज़ीर आज़म जफ़रखां का इंतकाल हो गया।

इसके बाद बहुत दिनों तक औरंगज़ेब ने कोई वज़ीर मुक़र्रर नहीं किया और खुद राजा और मंत्री दोनों पदों का काम करता रहा। ऐसा करने की वजह यह थी कि औरंगज़ेब जिसको मंत्री बनाना चाहता था वह अभी कम उम्र था। इस अफ़सर का नाम असदखां था। यह बहुत खूबसूरत और होशियार आदमी था। शाहजहां इसको बहुत मानता था लेकिन उसके वक़्त में इसको कोई बड़ा दरजा नहीं मिल सका। जफ़रखां के मरने के वक़्त असद सिर्फ़ दो हज़ार

सवारों का सरदार था। उस वक़्त इसकी उम्र सिर्फ़ ४८ वर्ष की थी। इस उम्र में और इतने छोटे अफ़सर को अचानक ऐसे ऊँचे दरजे पर पहुँचा देने से बूढ़े लोग बहुत नाराज़ होते। यही ख़्याल करके कुछ दिन के लिये औरंगज़ेब ने अपना इरादा मुल्तवी किया। जफ़रख़ां के मरने पर सन् १६७० ई० में असदख़ां नायब दीवान मुक़र्रर हुआ। तारीख़ ८ अक्टूबर सन् १६७६ ई० में वह वज़ीर आज़म बनाया गया। ५० वर्ष से अधिक अवस्था के आदमी को पुराने बुज़ुर्ग लोग महज़ लौंडा समझते थे। काबुल के सूबेदार महाबतख़ां ने इसकी बाबत एक ज़ोर की चिट्ठी बादशाह के पास भेजी थी, जिसमें दिखलाया गया था कि असदख़ां से नामर्द के वज़ीर होने से कितनी बुराइयां हो रही हैं। तजरबे से मालूम हुआ कि महाबतख़ां का लिखना सरासर ग़लत था। नए वज़ीर ने बड़ी ख़ूबी से अपना काम अंजाम दिया। ३१ वर्ष तक उसने नए पद पर काम किया। सब लोग उससे ख़ुश थे। उसमें अगर कोई बुराई थी तो यह थी कि वह ऐयाश था और रंडी मुंडी का बड़ा शौक़ीन था। औरंगज़ेब के मरने के ९ वर्ष बाद सन् १७१६ ई० में ९४ वर्ष की अवस्था में उसका देहांत हुआ।

अँगरेज़ी राज्य में जो काम जज लोग करते हैं वही काम मुसलमानी ज़माने में क़ाज़ी लोग करते थे। औरंगज़ेब के क़ाज़ियों में सब से ऊँचा पद था क़ाज़ी अब्दुलवहाब का।

आप बोहरा मुसलमान था। माड़वारी और पारसियों की तरह बोहरे लोग भी तिजारत पेशा होते हैं। पहले ये लोग हिंदू थे लेकिन बाद में मुसलमान हो गए। अब्दुलवहाब शाहजहां के वक्त में पत्तन का क़ाज़ी था। जब औरंगज़ेब ने बूढ़े बाप को क़ैद करके तख़्त पर ज़बरदस्ती अपना आसन जमाया, सब क़ाज़ियों ने इसको गुनाह ठहराया लेकिन मतलबी वहाब ने औरंगज़ेब का साथ दिया। उसने कहा चूंकि शाहजहां बूढ़ा बेकार और कमज़ोर हो गया था, औरंगज़ेब का ख़ाली तख़्त पर बैठना इसलाम के ख़िलाफ़ नहीं है। इस एहसान को और ऐसे पक्के मुसलमान को औरंगज़ेब कब भूल सकता था? वहाब साहब सब से बड़े क़ाज़ी मुक़र्रर किए गए। औरंगज़ेब न सिर्फ़ मज़हबी मामलों में बल्कि सल्तनत के इंतिज़ाम में भी कलाममजीद पर अमल करता था। इसलिये अब्दुलवहाब की तूती बोलने लगी। हर मामले में उसकी राय ली जाती थी। वह अव्वल नंबर का बेईमान और बेरहम था। मातहत क़ाज़ियों की जगह ख़ाली होने पर रुपए लेकर वह लोगों को मुक़र्रर करता था। हर एक मुक़द्दमे में वह रिशवत लेता था। उसने छिपे तौर पर जवाहिरात की एक दूकान भी की थी। इन कई तरह की बेईमानियों से उसने १६ वर्ष में कुल ३३ लाख रुपए और बहुत से जवाहिरात इकट्ठे किए।

वहाब के मरने पर उसका बड़ा लड़का शेख़ुल इसलाम

उसकी जगह पर मुक़र्रर हुआ। बेटा उतना ही ईमानदार था जितना कि बाप बेईमान था। उसने विरासत में मिले हुए पाप के पैसों को हाथ से भी नहीं छुआ। बाप का धन दौलत उसने खैरात कर दिया। रिशवत के वह पास नहीं जाता था। दोस्त और रिश्तेदारों तक की डालियां क़बूल नहीं करता था। वह हमेशा इंसाफ़ करता था। झूठे गवाहों के बयानात सुनकर वह घबरा उठता था। कितने दफ़े उसने इस काम से छुटकारा लेना चाहा लेकिन औरंगज़ेब ने नामंज़ूर किया। बीजापुर और गोलकुंडा की लड़ाई के लिये औरंगज़ेब ने उससे फ़तवा लेना चाहा। इस ईमानदार अफ़सर ने ऐसा करने से इनकार किया और साफ़ साफ़ कह दिया कि ऐसा करना क़ुरान और इसलाम के खिलाफ़ होगा। विवश होकर अपना ईमान बचाने के लिये इसने सन् १६८३ ई० में इस्तीफ़ा दे दिया और मक्के चला गया। वापस आने पर वह पत्तन में रहता था। बादशाह ने कई बार उसको बुलवाया और नौकरी करने के लिये कहा लेकिन उसने क़बूल नहीं किया। आखिर में बादशाह ने लाचार होकर अपने हाथ से उसको खत लिखा और दरबार में बुलाया। शेखुल इसलाम डरते हुए दरबार में चला। रास्ते में वह प्रार्थना करता था कि किसी तरह झंझट से छुटकारा मिले। उसकी विनती सुन ली गई। दरबार में पहुँचने के पहले इस देवता तुल्य मनुष्य का प्राणांत हो गया।

उसके बाद अब्दुलवहाब के दामाद सैयद अबू सईद को यह पद मिला लेकिन ससुर के गुण आपमें भी थे। डेढ़ बरस के बाद अपनी रिशवतख़ोरी की वजह से आप बरखास्त हो गए। अंत में यह पद मुल्ला हैदर को मिला, जो पहले शिवाजी के यहां नौकर था। शिवाजी का वर्णन आपको आगे चलकर मिलेगा।

सिंहासन पर बैठने पर औरंगज़ेब ने नए नए मुल्क जीतकर अपनी सल्तनत बढ़ानी चाही। इसके लिये उसने जी जान से कोशिश की। सब से पहले पलामू पर चढ़ाई हुई। पलामू का ज़िला बिहार सूबे के बाहर दक्खिन तरफ़ बसा हुआ है। देश पहाड़ी और जंगली, नदी और नालों से भरा हुआ है। सन् १६६० ई० में दाऊदख़ां को पलामू पर चढ़ाई करने का हुक्म मिला। ३ मार्च सन् १६६१ ई० में वह कई फ़ौजदारों के साथ रवाना हुआ। कूठी का क़िला तारीख़ २४ अप्रैल को ले लिया गया। उसके बाद कुंडा पर चढ़ाई हुई। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई और सन् १६६२ ई० में पलामू फ़तह हुआ और मुग़ल सल्तनत में मिला लिया गया।

पलामू के बाद आसाम का नंबर आया। जब शुजा ढाके से भागकर चला गया, औरंगज़ेब कूचविहार और आसाम के राजाओं से बहुत नाराज़ हुआ। इन लोगों को सज़ा देने के लिये मीर जुमला तैनात किया गया। तारीख़ १

नवंबर सन् १६६१ ई० में वह ढाके से रवाना हुआ। तारीख़ १६ दिसंबर सन् १६६१ ई० में वह कूच की राजधानी में पहुँचा और तारीख़ १७ मार्च सन् १६६२ ई० में वह अहम की राजधानी में पहुँचा। तब तक बाढ़ आ गई और दुश्मन ने भी ज़ोर लगाया। मुग़ल सेना घिर सी गई और उसको बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। कितने लोग क़हत और हैज़े से मर गए। नवंबर तक यही दशा रही। बाढ़ हट जाने पर फिर धावा शुरू हुआ। जनवरी सन् १६६३ ई० में एक सुलहनामा हुआ जिसके मुताबिक़ बहुत सा मुल्क, हाथी और सोना बादशाह के भेंट हुए। आसाम की ख़राब आब हवा में कमज़ोर होकर तारीख़ ३० मार्च सन् १६६३ ई० में मीर जुमला का देहांत हो गया। ४ बरस तक सुलहनामे का अमलदरामद था। नवंबर सन् १६६७ ई० में आसामियों ने गोहाटी जीत लिया और मुग़लों को धुबरी तक हटा दिया।

दुश्मन को परास्त करने के लिये एक बड़ी सेना लेकर राजा रामसिंह भेजे गए। सन् १६६६ ई० से १६७६ ई० तक लड़ाई होती रही। रामसिंह ना-कामयाब रहा और वापस बुला लिया गया। सन् १६७८ ई० में एक अहम सरदार ने मुग़लों के हाथ गोहाटी बेंच दिया लेकिन दो बरस के बाद अहम राजा ने इसको फिर वापस ले लिया।

फ़िरंगी डाकू चटगांव में बड़ी लूट मार मचाया करते थे। इससे लोगों की जान और माल का बड़ा नुक़सान

होता था। अराकान का राजा इन डकैतों की सहायता किया करता था। शाइस्ताख़ां ने पहले फ़िरंगियों को फोड़-कर अपनी ओर कर लिया। फिर इनकी सहायता से उसने अराकान की समुद्री सेना को दो दफ़े शिकस्त दी। तारीख़ २६ जनवरी सन् १६६६ ई० में चटगांव फ़तह हुआ और बंगाल के सूबे में शामिल कर लिया गया।

औरंगज़ेब के राज में सब से बढ़कर जीत यह हुई कि तिब्बत ने उसकी मातहती क़बूल कर ली। सन् १६६५ ई० में कश्मीर का सूबेदार बादशाह का ख़त लेकर तिब्बत भेजा गया। चिट्ठी में लड़ाई की धमकी दी गई थी, और वहां के राजा से दिल्ली की मातहती क़बूल करने और अपने मुल्क में इसलाम जारी करने के लिये लिखा गया था। राजा इतना डरा कि उसने ६ मील आगे बढ़कर शाही ख़त की पेशवाई की। हुक्म की तामील की गई। तिब्बत में मसजिद बन गई और जहां पहले मुसलमानी मज़हब का नाम भी नहीं सुना गया था, आज़ान दिया गया। दिल्लीश्वर के राजराजेश्वर होने की घोषणा दी गई। औरंगज़ेब के नाम के रुपए और मुहर ढाले गए। एक हज़ार अशर्फ़ियां, दो हज़ार रुपए और तिब्बत की बहुत सी अच्छी चीज़ें लेकर दूत वापस आया। राजा ने एक सोने की कुंजी भी भेंट की। इससे यह मतलब था कि देश की स्वतंत्रता और स्वधर्म सदा के लिये उसने औरंगज़ेब के हाथ अर्पण कर

दिया। ऐसे ही कादर और कुल-कलंक लोगों के लिये "मनुष्य-रूपेण मृगाश्चरंति" का वाक्य चरितार्थ होता है। पर्वत-मालाओं से आवेष्ठित, वर्फ से ढके हुए तिब्बत में स्वतंत्रता-सूर्य की किरणें नहीं पहुँची थीं नहीं तो शताब्दियों के रक्षित जाति-गौरव का बलिदान इतने शीघ्र न हो जाता और न बुद्ध-धर्म के पवित्र तपस्थल में यवन मत का इतनी शीघ्रता से प्रवेश हो जाता। जिस तिब्बत में युरोपियन यात्रियों को भी भेष बदलकर डरते डरते आज आगे बढ़ना पड़ता है वहीं का राजा औरंगज़ेब के पत्र का स्वागत करने के लिये एक दो नहीं छ छ मील तक आगे बढ़ आवे! सब समय की महिमा है।

मोरंग-विजय

सन् १६६४ ई० में दरभंगा और गोरखपुर की पल्टनों की सहायता से मोरंग पर चढ़ाई हुई। लड़ाई अरसे तक होती रही लेकिन अंत में औरंगज़ेब की जीत हुई। गोरखपुर के सूबेदार अलावर्दीख़ां ने १४ हाथी और बहुत सी क़ीमती चीज़ें जो मोरंग से मिली थीं बादशाह के भेंट कीं। लेकिन कुछ दिन के बाद मोरंग-वाले स्वतंत्र हो गए थे, इसलिये शाइस्ताख़ां ने सन् १६७६ ई० में फिर उसको फ़तह किया।

कमाऊं का हमला

सन् १६६५ ई० में कमाऊं पर चढ़ाई हुई। श्रीनगर के राजा ने औरंगज़ेब से कहा था कि कमाऊं में सोना बहुत ज़्यादा है। कमाऊं-नरेश ने अला-

वर्दीख़ां को लिखा कि यह बात बिल्कुल ग़लत है। कमाऊं फ़ौरन जीत लिया गया लेकिन पहाड़ और पहाड़ियों पर क़ाबू करना आसान काम नहीं था। बहुत दिन तक झगड़ा चलता रहा। राजा बराबर माफ़ी मांगता रहा। सन् १६७३ ई० में राजा को माफ़ी मिली।

बीकानेर दंड

बीकानेर का राजा राव करन पहले मुग़ल-सेना में नौकर था लेकिन दारा के कहने पर औरंगज़ेब से पूछे बिना वह दक्खिन से चला आया। औरंगज़ेब के बादशाह होने पर राजा ने शाही दरबार में आना छोड़ दिया। राजा को दंड देने के लिये सन् १६६० ई० में अमीरख़ां भेजा गया। राजा परास्त हुआ। उसको माफ़ी दी गई और वह २ हज़ार सवारों का अफ़सर मुक़र्रर हुआ।

चंपतराय बुंदेला का नाम आप सुन चुके हैं। आप यह भी देख चुके हैं कि वीरसिंह की जगह पर देवीसिंह उर्छा की गद्दी पर बैठा। बुंदेलों ने इस जाति-द्रोही राजा के आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया। चंपतराय की अध्यक्षता में उन लोगों ने स्वतंत्रता का युद्ध जारी रखा।

कुछ दिनों के लिये चंपतराय और उनके लड़के अंगद ने मुग़लों की नौकरी कर ली थी लेकिन आप दासत्व-दुख भोगने के लिये नहीं बनाए गए थे। जिसको किसी मृगनयनी के नयनबाण लग जाते हैं वह संसार को भूल जाता है। जिसको परमात्मा की लगन लग जाती है वह मस्त होकर

भटकता रहता है। ऐसे ही जिसको स्वतंत्रता देवी की भव्य और मनोहारिणी मूर्ति का एक बार भी दर्शन हो गया, कहीं दूर से झलक भी दिखाई पड़ गई, फिर क्या है ! शम्श तबरेज़ और सरमद अगर हक़ (सत्य और ईश्वर) के लिये क़हक़हे लेते हुए सूली पर चढ़ गए तो कितने ही देशभक्त समय समय पर हक़ (स्वत्व) के लिये क़ुरबान हो गए।

स्वतंत्रता से बढ़कर होगी वस्तु न और मनोहारी।
जिसकी रक्षा-हित तन मन धन सर्वस अपना बलिहारी॥
स्वतंत्रता से हीन मनुज है पशु औ कीट समान।
होने से परतंत्र भला है रहे न तन में प्रान॥

माता स्वतंत्रता ने वीर चंपत को अपनी झांकी दिखला दी थी। वह यवनों की जूती उठाने का काम नहीं कर सकता था। अस्तु वह बुंदेला वीर फिर भूखे शेर की तरह भटकने लगा। शुभकरन बुंदेला तथा दूसरे राजपूतों की सेना उसको पकड़कर पींजड़े में डालने के लिये तैनात की गई। कहां तो वीर अपनी जान पर खेलकर हिंदूजाति, आर्यधर्म और भारतमाता के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिये वन वन भटकता था, कहां माता के दूसरे पुत्र उसको दंड देकर माता के पैर बेड़ियों से जकड़ने के लिये तैयार हो गए। हिंदूजाति के लिये यह कोई नई बात नहीं है। यह इस जाति की सब से बड़ी निर्बलता है। राक्षसों की लंका में

सिर्फ़ एक विभीषण पैदा हुआ था। एक ही विभीषण की बदौलत अनहोनी बातें हो गईं। सोने की लंका भस्म हो गई, पत्थर पानी पर तैरने लगे, रावण और कुंभकर्ण के वीर वंश में आज पानी देने को कोई नहीं रह गया। लंका में एक था लेकिन इतिहास और अनुभव से पता चलता है कि भारतवर्ष में प्रांत प्रांत, नगर नगर, ग्राम ग्राम, घर घर में हिंदू विभीषण आपको दिखाई पड़ते हैं। जिनके निवासस्थान ठीक विभीषण की कुटिया की तरह "राम-नाम-अंकित गृह" हैं, बाहर भी "नव तुलसी के वृंद बहु" चरितार्थ होता है उनके लिये अपने घर का भेद दे देना, भाई को पकड़वा देना, देश का सत्यानास कर देना बाएं हाथ का खेल हैं। संसार को मालूम है कि हिंदुओं में जन है, धन है, बल है, पराक्रम है, सदाचार और आस्तिकता है। ऐसी जाति अगर एक होकर खड़ी रहेगी तो संसार को कँपकँपी लगी रहेगी। इसी लिये समय समय पर अपना मतलब साधने के लिये लोगों ने हमारे घर में फूट पैदा की है। इसमें उन लोगों का उतना दोष नहीं है जितना हमारा अपना। देश और जाति पर जब कोई दुश्मन चढ़ाई करता है, हम मुँह काला करके छिप जाते हैं। लेकिन जब कोई वीर हिंदू, कोई माता का लाल अपना प्राण देकर कर्तव्य पालन करने को उठता हैं तब हमारी बुद्धि खुलती है, हाथों में बल आ जाता है, शरीर में तेज प्रवेश कर जाता है। कसाई के कुत्तों की तरह

हम भूंकने लगते हैं, काटने को दौड़ते हैं, अपने भाई को काट भी लेते हैं और काटकर कभी कभी उसको मार भी डालते हैं। अच्छा होता कि ऐसे नीच कर्म करते समय हमारे शरीर निष्प्राण हो जाते, हाथ कटकर गिर जाते। हिंदुओं में जब तक संगठन न होगा तब तक देशहित के गीत से भला होने का नहीं। हम में बड़ा भारी ऐब यह है कि हमारी उदारता और संकीर्णता दोनों हद को पहुँची हुई हैं। जो पत्थरों तक में परमात्मा का दर्शन करते हैं, मंदिरों की सजावट में लाखों ख़र्च कर देते हैं वे अपने भूख से कलपते हिंदू बच्चे को मूठी भर चना देने के रवादार नहीं हैं। जो गांव के भीटों पर मीलों घूम घूमकर चीटियों के बिलों पर आटा छींटते रहते हैं, वे भाई की गर्दन पर छुरी फेरने के लिये, किसी देशभक्त की झूठी निंदा करके अफ़सरों की कुर्सी तोड़ने के लिये सबसे पहले तैयार रहते हैं।

हमको चाहिए कि इन दोनों तरह की अधिकताओं के बीच में आकर जातीयता और अपनपौ के भावों पर आचरण करें। हम लोगों को समझ लेना चाहिए कि अगर हिंदू मिलकर, एक होकर, नहीं रहेंगे तब तक दुनिया में उनका नामो निशान नहीं रहेगा। खुदग़र्ज़ी के भाव को एकदम निकाल दीजिए। अगर अपने को पशु की श्रेणी में गिराकर अपने देश का अहित करके आपने अपना स्वार्थ साधन कर लिया तो क्या! याद रखिए कि आपका यह

स्वार्थ मृगतृष्णा है। हिंदूजाति का अहित करके आपका हित हो ही नहीं सकता है, क्योंकि आप उस विशाल चंदनवृक्ष की एक मुरझाई टँघनी हैं। वृक्ष काटकर क्या शाखा की रक्षा हो सकती है। आप हरे भरे तभी तक रहेंगे जब तक पेड़ हरा भरा रहेगा। अलग हो जान पर रोज़गारी आपको काट डालेंगे। काटकर आपकी पत्तियां अलग सूख जायँगी, डाली के छोटे छोटे बालिश्त भर से भी छोटे टुकड़े कर दिए जायँगे। भक्त लोग खुरखुरे पत्थर पर आपको खूब रगड़ेंगे। रगड़ रगड़कर आपको घिस डालेंगे। आपका शरीर पिसकर सुगंध पैदा करेगा और आपके काटनेवाले के ललाट की शोभा बढ़ावेगा लेकिन आपके लिये क्या! कहां वह हवा के ठंढे झोंके, कहां वह वन की एकांत भूमि, पर्वत का वह सुरम्य पड़ोस, गंगा की वह हरहराती धारा, पास में हरित मलय पादप, उसकी गोद में लहराती और मँचलाती शाखा आप! कहां हत्यारे के संदूक़ में सात तह कपड़े में लपेटे हुए अपनों से इतनी दूर आप! आर्य का म्लेक्ष के हाथों में पड़ना वैसा ही है जैसा चंदन का चमार के हाथ में पड़ जाना।

"चंदन पड़े चमार घर नित उठि छीलै चाम।
रोवै चंदन सर धुनै पड़ा नीच से काम॥"

राजपूतों का औरंगज़ेब की ओर होकर चंपतराय का पीछा करना ऐसा ही था। जब शुभकरन और उसके साथियों

को सफलता नहीं हुई, देवीसिंह की मातहती में दूसरी सेना मदद देने को भेजी गई। मालवा के जागीरदार और सिपाही भी तैनात किए गए। अब अकेला चंपतराय चारों ओर शत्रुओं से घिर गया। वीर बुंदेला जगह जगह, वन पर्वत नदी नाले और कंदराओं में भागता फिरता था, औरंगज़ेब की हिंदू सेना चारों ओर से उसका पीछा कर रही थी। साथी एक एक करके अलग हो गए। खुशामद और खुदग़र्ज़ी के मारे ज़्यादातर बुंदेला सरदार चंपतराय का पीछा करने लगे। चंपत के भाई सज्जनराय का क़िला ले लिया गया। सज्जन ने अपमान से बचने के लिये आत्म-हत्या कर ली। चंपतराय जहां गया, लोगों ने उसको रखने से इनकार किया। तीन दिन और रात के भूखे प्यासे और थके आप अपनी बहन के यहां गए लेकिन वहां भी घूंट भर पानी पीने को नहीं मिला। सहरा के राजा साहब राय धंधेरा ने धोखा देकर चंपत को पकड़वाना चाहा। अक्टूबर सन् १६६१ ई० में चंपत ने देखा कि किसी तरह प्राण नहीं बचेंगे। विवश होकर आपने आत्म-हत्या कर ली। ऐसे वीर की स्त्री भला कब अपना सतीत्व भंग कराने के लिये जीवित रह सकती थी। अस्तु महारानी कालीकुमारी ने भी स्वर्ग में आपका साथ दिया।

चंपतराय के लड़के छत्रशाल भी पिता की तरह वीर थे। जयसिंह के कहने से आप कुछ दिन के लिये मुग़ल सेना में भरती हो गए। वही पल्टन सन् १६६४ ई० में महाराज

शिवाजी से लड़ने गई । शिवराज से मिलकर कोई हिंदू अहिंदू रही नहीं सकता था । हिंदुओं की मर्यादा रखने के लिये आप यवन सेना छोड़कर अलग हो गए। सन् १६७१ ई० से आपने लूट मार करना और मुग़लों को सताना शुरू किया । कई बार कई सेनाएं भेजी गई लेकिन राजा पराजित नहीं हुआ । औरंगज़ेब के मरने पर बहादुरशाह ने छत्रशाल को राजा स्वीकार करके उसका आदर किया । छत्रशाल ने भी इसके बदले में बादशाह के लिये लोहगढ़ फ़तह कर दिया । सन् १७३२ ई० में फ़र्रुखाबाद के सूबेदार मुहम्मदख़ां ने बड़ी लूट पाट मचाई । छत्रशालजी अब ८२ वर्ष के निर्बल वृद्ध हो गए थे । विवश होकर आपने प्रथम बाजीराव पेशवा से मदद मांगी । आपने पत्र में लिखा,

जो गति ग्राह गजेंद्र की, सो गति जानहु आज ।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज ॥"

पेशवा बाजीराव ने सेना भेजकर मुहम्मदख़ां को परास्त किया। कृतज्ञता में छत्रशाल ने अपने राज्य का तीसरा हिस्सा पेशवा को दे दिया। सन् १७३४ ई० में महाराज का देहांत हुआ । छत्रपुर में इनकी समाधि बनी है । लोग अब तक छत्रशाल का गुण गाते हैं और जब तक हिंदू जाति और हिंदी भाषा रहेगी गावेंगे ।

अफ़ग़ान-युद्ध

अभी तक जिन लड़ाइयों का हाल दिया गया है वे हिंदुओं के साथ हुई । जिस युद्ध का वर्णन अब किया

जायगा वह मुसलमानों के साथ हुआ। आप देख चुके हैं कि औरंगज़ेब कितना सख़्त आदमी था। आप यह भी जानते हैं कि अफ़ग़ान की सरहदी क़ौमें लूट पाट की आदी हैं। सरहद की अफ़रीदी तथा दूसरी जातियां लूट पाट विना कैसे रह सकती थीं! औरंगज़ेब इनकी ज्यादतियां कैसे वरदाश्त कर सकता था! इसीलिये अफ़ग़ानों और मुग़लों की मुठभेड़ हो गई। इनकी लड़ाई तो अकबर के वक़्त से चली आती थी। लुटेरों से आजिज़ आ-कर मुग़ल सेना भेजी जाती थी, अफ़ग़ान तंग होते थे, इनके घर जलाए जाते थे, फ़सिल काटी और वरवाद की जाती थी। तलवार के ज़ोर से इनकी संख्या कम की जाती थी। जगह जगह सिपाही तैनात किए जाते थे। सब कुछ होते हुए भी मौक़ा पड़ने पर अफ़ग़ान उभड़ जाते थे, मुग़लों को भगा देते थे। जब हर साल इन पर चढ़ाई होने लगी, लाचार होकर इन लोगों ने सुलह की, लेकिन ऐसे लोगों की सुलह कै घड़ी चल सकती थी!

अभी तक तो अफ़ग़ान महज़ लूट पाट करते और मुग़लों के धावे से अपना प्राण वचाते थे। लेकिन सन् १६६७ ई० में उनका हौसला और भी बढ़ गया। यूसुफ़ज़ाई लोगों के एक सरदार का नाम था भग्गू। वह सब अफ़ग़ानी क़ौमों को इकट्ठा करके उनका मुखिया बन गया। ५ हज़ार आदमियों को इकट्ठा करके उसने मुग़लों के पंजाबी सरहद

पर हमला किया । इनके धावे से लोग परेशान हो गए। बादशाह ने इनको ठीक करने का पक्का इरादा कर लिया। बड़ी धूमधाम से चढ़ाई हुई ।

बादशाह ने तीन तरफ़ से धावा करने का इरादा किया। अटक का फ़ौजदार क़ामिलख़ां अपनी सेना लेकर भेजा गया। काबुल का सूबेदार १२ हज़ार पल्टन के साथ तैनात किया गया। १० हज़ार चुने हुए सिपाहियों के साथ मुहम्मद अमीनख़ां दरबार से भेजा गया। जब तक और सेनाओं के आने में देरी हुई, क़ामिलख़ां ने हमला कर दिया। दुश्मन ने भी ख़ूब तैयारी करके हारून नदी का घाट रोक के मुक़ाबिला किया। बाद में मदद के लिये और सेनाएं भी पहुँच गईं । मुहम्मद अमीनख़ां सब का कमांडर बनाया गया। यूसुफ़ज़ाई लोग परास्त हुए । शमशीर के हाथ में कमांड देकर अमीनख़ां दरबार में लौट आया । सन् १६७२ ई० तक सरहद के किसी फ़िरक़े ने दंगा फ़साद नहीं किया।

सन् १६७२ ई० में अफ़रीदियों ने अपने सरदार अकमल-ख़ां की मातहती में उपद्रव किया । अकमल बड़ा बहादुर जेनरल था। उसने अपने को बादशाह मशहूर कर दिया और वह अपने नाम का सिक्का ढालने लगा। मुग़लों का मुक़ाबिला करने के लिये उसने पठानों को इकट्ठा करके ख़ैबर पास का रास्ता बंद कर दिया।

मुहम्मद अमीनख़ां बड़ी भारी सेना लेकर पठानों को सज़ा देने के लिये रवाना हुआ। जमरूद जाने पर उसको मालूम हुआ कि पठानों ने रास्ता बंद कर दिया है। लोगों ने उसको इस ख़तरे से आगाह किया और आगे बढ़ने से रोका लेकिन मग़रूर अमीनख़ां कब किसी का कहा मान सकता था ! अपने घमंड के नशे में चूर वह तारीख़ २१ अप्रैल को अली मसजिद में पहुँचा। रात में उतर-कर अफ़रीदियों ने चश्मे में बांध बांधकर लश्कर में पानी आना रोक दिया। दूसरे दिन पल्टन की पल्टन प्यासों मरने लगी। दुश्मन ने हमला करके मुग़ल सेना को तबाह कर दिया। मुहम्मद अमीन कुछ अफ़सरों के साथ किसी तरह जान लेकर पेशावर भागा। ४० हज़ार मुग़ल काटे गए। २० हज़ार के क़रीब मर्द और औरतें ग़ुलाम बनाकर बेचे गए। करोड़ों रुपए के माल लुट गए। ख़ां साहेब की मा, बीवी और लड़की भी क़ैद की गई थीं, जो बाद में बड़ी मुश्किल से किसी तरह छुड़ाई गईं। इनकी बीवी को इतनी ग्लानि हुई कि उसने घर वापस जाना ना-मुनासिब समझा और एक फ़क़ीर की क़ब्र के पास रहकर उसने अपनी ज़िंदगी काटी। बरबादी बड़ी भारी हुई। ऐसी परेशानी इसके पहले एक दफ़ा अकबर के वक़्त में उठानी पड़ी थी जब वीर अफ़ग़ानों ने राजा बीरबल की पल्टन को काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया था। इस जीत ने अफ़रीदी सरदार

अकमलखां का नाम और प्रभाव और भी बढ़ा दिया।

जिन दिनों में अकमल ने मुग़ल सेना को परास्त किया, खटक फ़िरक़े का सरदार खुशहालखां अलग मुग़लों का मुक़ाबिला कर रहा था। लेकिन जब अपने घरवाले फूट जायँ तो कोई भी वीर क्या कर सकता है! खुशहाल पेशावर के दरबार में बुलाया गया। उसके चचा लोगों ने धोखा देकर उसको गिरिफ़्तार करा दिया। खुशहाल क़ैद करके दिल्ली भेज दिया गया। वह न सिर्फ़ एक बहादुर योधा था बल्कि प्रतिभाशाली कवि भी था। देश के जगाने के लिये वह बहुत ही उपयुक्त आदमी था। वीर देशभक्तों को लेकर वह युद्ध करता था और कादरों और सोते हुओं को वह अपनी वीर-रस की कविता से जगाता था, सचेत करता था। क़ैद हो जाने पर जब हाथ में हथियार नहीं रहा, खुशहाल अपनी लेखनी से मनोविनोद करता था। पश्तो भाषा में उसने औरंगज़ेब की नीचताओं का सच्चा चित्र खींचा है।

सन् १६६६ ई० में औरंगज़ेब ने खुशहाल को यूसुफ़ज़ाइयों से लड़ने के लिये भजा। खटक और यूसुफ़ज़ाई लोगों में बहुत दिनों की खटपट चली आती थी। खुशहाल का बाप यूसुफ़ज़ाई लोगों के हाथ से मारा गया था। बाप का वैर साधने के लिये या अपनी स्वतंत्रता के लिये खुशहाल इन लोगों से लड़ने के लिये गया। वह गया तो लेकिन इस नीच कर्म में उसका जी नहीं लगा। उसके चित्त में महाकवि वाल्मीकि के निम्नलिखित भाव आ गए—

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥

खुशहाल मुग़ल सेना छोड़कर अकमल से मिल गया। दोनों वीरों ने मिलकर मुग़ल सेना का मुक़ाविला किया। दोनों ने स्वजातिसेवा का वीड़ा उठाया। इन सुयोग्य लीडरों की कोशिश से कुल पठान जातियां एक होगई। कंधार से अटक तक के कुल फ़िरक़े भेदभाव छोड़कर मिल गए। सबसे बढ़कर वात तो यह थी कि दोनों पठान नेता मुग़ल सेना में काम कर चुके थे, उसकी चालाकियों और कमज़ोरियों को अच्छी तरह जानते थे।

पठानों की तैयारी की ख़वर सुनकर औरंगज़ेव ने लाहौर के सूवेदार फ़िदेख़ां को पेशावर भेजा। महावतख़ां कावुल का सूवेदार वनाकर भेजा गया। उसको अफ़ग़ानिस्तान के लोगों से ख़ूब आगाही थी इसलिये आशा की जाती थी कि वह जल्द झगड़े को दवा देगा। इसमें शक नहीं कि महावत-ख़ां अगर चाहता तो वहुत कुछ कर सकता था लेकिन अपनी जान जोखिम में डालना वह नहीं चाहता था। उसने पठानों से गुप्त रीति से यह सुलह कर ली कि न तो वे मुग़ल सेना पर हमला करें और न मुग़ल सेना उन पर चढ़ाई करे। इस तरह कई महीने सुख से वीत गए। जव वादशाह को यह भेद मालूम हुआ तो उसने शुजाअतख़ां को सेनापति वना कर एक वड़ी पल्टन के साथ लड़ने के लिये भेजा। जसवंत-

सिंह सहायता देने के लिये साथ में भेजे गए । शुजाअतख़ां बड़े छोटे दरजे से बढ़ा था इसलिये महाबतख़ां और जसवंतसिंह दोनों उससे जलते थे। अभिमानी शुजाअत इन लोगों को कुछ समझता भी नहीं था। जहां घर में इतनी फूट वहां जीत की क्या उम्मीद हो सकती है । यही कारण है कि सन् १६७४ ई० में मुग़ल सेना परास्त हुई और उसको परेशानी उठानी पड़ी। कुछ फ़िरक़े शुजाअतख़ां को धोखा देकर आगे चढ़ा ले गए । जसवंतसिंह ने उसको जाने से रोका लेकिन उसकी बात नहीं सुनी गई।

सर्दी, बारिश और बर्फ़ से सब लोग परेशान होगए। अफ़ग़ानों ने ऊपर से पत्थर फेंकना शुरू किया। बहुत से लोग तो रात ही में ठंढे हो गए थे । जो बचे थे उनमें से अधिकांश को अफ़ग़ानों ने उतरकर मार डाला । शुजाअतख़ां बहादुरी से लड़कर मारा गया। जसवंतसिंह के बहादुर राठौरों ने किसी तरह बाक़ी लोगों को बचाया। हार की खबर सुनकर औरंगज़ेब को बड़ा दुःख हुआ । तारीख़ २६ जुलाई को वह खुद हसन अब्दाल गया। बड़ी धूमधाम से तैयारी की गई। तुर्की सरदार अधारख़ां रास्ता साफ़ करने के लिये तैनात किया गया। असदख़ां के साथ में शाहज़ादा अकबर कोहाट की ओर से भेजा गया । महाबतख़ां वापस बुला लिया गया । अफ़ग़ानों की सेना से कई गुनी सेना इकट्ठी की गई। लेकिन औरंगज़ेब सदा बल के साथ साथ

छल का प्रयोग किया करता था। जागीरें, ख़िताब और नौकरियां दे देकर बहुत से पठान फोड़ लिए गए। बहुत से लोग लालच और औरंगज़ेब की चाल में आ गए लेकिन इन अशिक्षित अफ़ग़ानों में फिर भी बहुत से फ़िरक़े बच गए थे जो आत्मगौरव को उच्चपद से, देशभक्ति को पदवियों से और स्वतंत्रता को विलासिता से अधिक बहुमूल्य समझते थे। अस्तु वे लोग मातृभूमि के लिये लड़ते रहे। ग़ोरी, ग़िलज़ाई, शीरानी, यूसुफ़ज़ाई फ़िरक़े लड़कर परास्त हुए। दाऊदज़ाई, तारकज़ाई और तीराही फ़िरक़ों ने हार मान ली। खुशहाल का लड़का मुहम्मद अशरफ़ बादशाही पल्टन में नौकर हुआ लेकिन बूढ़ा अपने प्रण पर अड़ा रहा। अधरख़ां ने उसके बाद पठानों को खूब ठीक किया। सन् १६७५ ई० में अफ़ग़ानों ने फ़िदाख़ां को लूट लिया। उन लोगों ने और भी बहुत से उपद्रव किए। बदला लेने के लिये एक मज़बूत सेना भेजी गई। अफ़ग़ान हराए गए। लेकिन ऐसे लोगों का हारना क्या। आज हार मान लेते थे या भाग जाते थे तो कल वापस आकर धावा कर देते थे।

अमीरख़ां सन् १६७७ ई० से लेकर सन् १६७८ ई० तक अफ़ग़ानिस्तान का सूबेदार रहा। इस चतुर अफ़सर ने अफ़ग़ानों को अपने बर्ताव से खुश कर लिया और उनमें आपस में फूट भी पैदा कर दी। इस हिकमत से सरहद में बहुत कुछ शांति हो गई। अफ़ग़ान अब चुप हो गए, लेकिन

बूढ़ा शेर बहादुर खुशहाल अब भी डँटा रहा, स्वतंत्रता का झंडा फहराता रहा। वह अकेला पठानों की जातीयता का झंडा फहरा रहा था। लेकिन जिस जाति में कादरता का प्रवेश हो गया, स्वार्थ ने जिसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया, वैमनस्य ने जिसको पागल बना दिया है, उसमें एक आदमी क्या कर सकता था और कब तक वह अकेला रहकर स्वतंत्र रह सकता था। खुशहाल के लड़के ने उसको गिरिफ़्तार करवा दिया।

अफ़ग़ान युद्ध में बादशाह का बहुत धन ख़र्च हुआ, लेकिन इससे भी बढ़कर उसकी यह हानि हुई कि अफ़ग़ानों की हमदर्दी उसकी ओर से जाती रही। यही कारण था कि राजपूत युद्ध में अफ़ग़ानों से मदद नहीं मिल सकी थी। बादशाह के लिये तीसरी ख़राब बात यह हुई कि अच्छे अच्छे अफ़सर दक्खिन से अफ़ग़ानिस्तान में भेज दिए गए।

दूसरा अध्याय।

औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता।

खलक का एक ही खुदा है और उसकी तरफ़ से एक ही रसूल है। उस पैगंबर के बतलाए रास्ते पर न चलना, उस खालिक और मालिक अल्लाहताला के हुक्म से गुरेज़ करना है। जो खुदा और रसूल की नसीहतों का क़ायल नहीं वह काफ़िर है। ऐसे बेईमान के लिये बिहतर है कि वह जहां तक जल्द हो सके अपनी बद-आमाली का नतीजा भुगतते हुए इस दुनिया से कूच करे। इसी वजह से हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि खुदा के हुक्म यानी इसलाम के फैलाने के लिये काफ़िर को मुनासिब सज़ा दे। जब ग़रीब से ग़रीब मुसलमान के लिये काफ़िर का मारना और सताना फ़र्ज़ मंसबी, लाज़िमी और मज़हबी है, तो मुसलमान बादशाहों के लिये इस फ़र्ज़ की जवाबदेही कितनी ज्यादा हो जाती है! घड़े में पानी रखकर किसी को प्यासे मरने देना जितना बड़ा गुनाह है, हाथ में डंडा लेकर विषैले सांप को खेलने देना जितना बड़ा पाप है, बादशाह होकर, ताक़त और तलवार होने पर भी करोड़ों काफ़िरों को जीते जागते छोड़ देना उससे कहीं बढ़कर कुकर्म है। मारने के पहले काफ़िर को मुसलमान होने के लिये एक मौक़ा ज़रूर देना चाहिए। लेकिन अगर

उसपर भी वह नहीं सँभलता है, इसलाम की रौशनी देख-कर भी कुफ़्र की तारीकी में रहना चाहता है, उसकी हालत क़ाबिल रहम नहीं है। जहां तक जल्द हो ऐसे लोगों का काम तमाम होना चाहिए। काफ़िरों में भी अहल हिनूद की हालत सब से अबतर है जो बजाय एक परवरदिगार के करोड़ों झूठे देवी देवताओं को पूजते हैं, इतना ही नहीं बल्कि पत्थर और मिट्टी को पूजकर खुदा की हजो करके अपनी ज़िंदगी मिट्टी में मिलाते हैं, नदी नालों, दरख़्त और पहाड़ों को सिज़दा करते हैं, घंटे और शंख बजाकर अपनी बेवकूफ़ी को दुनिया में मुश्तहिर करके मुसलमानों को भी गुमराह करने की कोशिश करते हैं। हिंदू इतने नालायक़ हैं कि अपना नफ़ा नुक़सान नहीं समझते हैं। उनकी बिहतरी इस बात में थी कि वे जल्द इसलाम को क़बूलकर अपना दीन और दुनिया दुरुस्त करके अपने मंदिर तोड़कर उनकी जगह मसजिद बनवाते। अफ़सोस सदअफ़सोस कि बजाय ऐसा करने के इस-लाम से गुरेज़ करते हैं, पुराने मंदिरों का गिरवाना तो अलग रहा और नए मंदिर बनवाते जाते हैं। ऐसे नालायक़ों के लिये खुद मुसलमानों का फ़र्ज़ है कि इनके मंदिरों को तोड़ दें, इनके बुतों को पैरों के नीचे कुचलें, इनको जानी और माली नुक़सान पहुँचावें, इनको ज़बरदस्ती मुसलमान बनावें, तंग करें और मौक़ा पड़ने पर जो कुछ जी में आवे करें। ऐसी कोशिशों से क़तई उम्मीद है कि अगर खुदा और रसूल की

मिहरवानी हुई काफ़िर एक एक करके दुनिया से नेस्तनाबूद हो जायँगे, इसलाम का जल्वा और ईमान की रोशनी दुनिया में चमकेगी। खुदा करेगा तो एक दिन आवेगा कि सारी दुनिया हज़रत रसूल की पैरो होगी, और कुफ़्र मिटेगा।

बिहिश्त पाने के लिये मुसलमान को रोज़ा नमाज़ की उतनी ज़रूरत नहीं है। काफ़िर के मार डालने से उसकी आक़बत दुरुस्त हो जाती है। यह पुरानी बात नहीं है जिनके हाथ में ताक़त है, उनमें से कितने ही अब भी ऐसा कर डालने का साहस करते हैं। इस क्रूरता की सब से नई मिसाल मिस्रि देश में हुई है। एक मुसलमान ने बूट्रसपाशा को बिला क़सूर क़त्ल कर डाला था। पाशा का इतना ही क़सूर था कि वह क्रिश्चियन था। क़त्ल का जुर्म शहादत से साबित हो गया था लेकिन प्रधान क़ाज़ी ने फ़ैसला दिया कि काफ़िर के मार डालने में इसलाम के मुताबिक़ कोई जुर्म नहीं है। एक सभ्य देश के सब से बड़े जज के न्याय का यह उदाहरण है सो भी ऐसी हालत में जब ब्रिटिश गवर्मेंट की धार्मिक निष्पक्षता का नमूना उस देश के सामने मौजूद है।

इसलाम की इसी आज्ञा के पालन में हिंदुस्तान पर पहला हमला करनेवाले मुहम्मद क़ासिम ने मंदिर तोड़ा। तैमूर ने जब हिंदुस्तान पर हमला किया, उसका ख़ास मतलब था मंदिरों को गिरवाना, मूर्तियों को तोड़ना, और खुदा के

२

सामने ग़ाज़ी और मुजाहिद होना। हिंदुस्तान के मुसलमान बादशाहों से जहां तक बन पड़ा उन्होंने हिंदुओं पर जुल्म किया। अकबर के से शांतिप्रिय बादशाह का भी वसूल था कि चाहे हिंदू जिस तरफ़ मरे, इसलाम का फ़ायदा होगा "हर तर्फ़ शव्वाद कुश्ता सुदी इसलाम"। जहांगीर और शाहजहां ने भी मंदिर और मूर्ति तोड़े थे।

जब मामूली और मुलायम बादशाहों ने इस दरजे तक इस मज़हबी हुक्म की तामील की थी, औरंगज़ेब के से कट्टर मुसलमान को और कितना जुल्म नालायक़, नाचीज़, बदबख़्त और बेईमान हिंदुओं पर करना चाहिए था। औरंगज़ेब की दिली-मुराद थी कि सारी दुनिया में इसलाम की तेग़ चमके, मुसलमानों की तादाद बढ़े, काफ़िर नेस्तनाबूद और ज़लील हों।

इस इरादे को पूरा करने के लिये उसने दुनिया की दूसरी मुसलमान सल्तनतों से दोस्ती पैदा की, क्योंकि दस आदमी मिलकर जो काम कर सकते हैं उसे एक थोड़े ही कर सकता है। मुसलमानों के लिये मक्का शरीफ़ से बढ़कर पाक जगह इस दुनिया में नहीं। इसलाम की बुनियाद डालनेवाले हज़रत मुहम्मद के चरणों से जो स्थान पवित्र हुआ है, संसार भर के मुसलमान उसी ओर हर रोज़ पांच दफ़े सिजदा और नमाज़ करते हैं। इसीलिये मुसलमानी संसार में मक्का के शरीफ़ का पद बड़ा आदरणीय है। गोत्रघात का पाप मिटाने के लिये औरंगज़ेब ने शरीफ़ महाराज को प्रसन्न

करना आवश्यक समझा। ६ लाख ६० हज़ार रुपए लेकर सैयद मीर इब्राहीम मक्के भेजा गया। हुक्म हुआ कि यह धन मक्का और मदीना के फ़क़ीरों और सैयदों को बांट दिया जाय। पहले तो शरीफ़ ने रुपए लेने से इनकार किया क्योंकि शाहजहां की ज़िंदगी में बादशाहत करने का औरंगज़ेब को कोई हक़ नहीं था।

रुपया वापस आने में औरंगज़ेब की बड़ी बेइज्ज़ती होती। इसलिये बड़ी कोशिश की गई कि वह क़बूल हो जाय। बादशाही दूत पांच बरस तक इसी फेर में पड़कर हज करता रहा। अंत में शरीफ़ ने भेट स्वीकार की। सैयद इब्राहीम ने सन् १६६१ ई० में मक्के शरीफ़ से बिहिश्त का रास्ता लिया। हाजी अहमद सैयद उसकी जगह पर मिशन का सरदार होकर सन् १६६५ ई० में काम पूरा करके दिल्ली वापस आया। सैयद यहिया शरीफ़ की तरफ़ से ख़त और तुहफ़े लेकर साथ में दरबार में आया। १३ हज़ार रुपए उसको बिदाई में मिले। तब से हर साल शरीफ़ के दूत आते और भेंट ले जाते थे। औरंगज़ेब का मतलब था कि रुपया फ़क़ीरों को बांटा जाय लेकिन शरीफ़ साहब उसको खुद हज़म कर जाते थे। अंत में लाचार होकर बादशाह ने उनको रुपया देना बंद कर दिया। सूरत के अरबी व्यापारियों की मारफ़त रुपया मक्के के फ़क़ीरों में बांट दिया जाता था।

औरंगज़ेब के बादशाह होने पर शाह ईरान ने उसको मुबारकबाद देने के लिये अपना दूत भेजा। औरंगज़ेब ने दूत की बड़ी ख़ातिर की। दोनों बादशाह चाहते थे कि आपस में दोस्ती रहे लेकिन बुरा हो मज़हबी तअस्सुब का जिसने ऐसा नहीं होने दिया। वजह यह थी कि शाह ईरान शीया मज़हब का महाफ़िज़ था लेकिन औरंगज़ेब शीयों को नफ़रत की नज़र से देखता था। नतीजा यह हुआ कि जहां कोशिश मेल करने की की गई थी, वहां दोनों बादशाहों में और दुश्मनी बढ़ गई। मरते दम तक औरंगज़ेब शीयों से नफ़रत करता था। वह अक्सर कहा करता था "ईरानी ग़ुली वियाबानी"। शीयों को वह "बातिल मज़हबान" कहा करता था।

बलख़ और बुख़ारे से पक्की दोस्ती हो गई। कासग़र के भागे हुए बादशाह की अच्छी ख़ातिर की गई। टर्की के बादशाह ने औरंगज़ेब के पास ख़त भेजा था जिसके जवाब में बादशाह ने बड़े आदर की चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी में एक बात नोट करने की है। गोकि टर्की के बादशाह के नाम के साथ बहुत से ख़िताब जोड़े गए थे लेकिन वह ख़लीफ़ा नहीं कहा गया था। इससे साफ़ मालूम होता है कि सुल्तान टर्की न तो कभी मुसलमानी मज़हब के ख़लीफ़ा माने गए और न ऐसा होना चाहिए। अपने को दुनिया के मुसलमानों का सरपरस्त मानना टर्की का मनगढ़ंत

हौसला है। ऐसी दशा में अगर हिंदुस्तानी मुसलमान टर्कों के फेर में पड़ें तो उनकी सख़्त ग़लती है। उनको समझ लेना चाहिए कि अब हिंदुस्तान ही उनका वतन और अँगरेज़ी सरकार उनके लिये एकमात्र ख़लीफ़ा है। जहां शीया और सुन्नी दोनों को बराबर मज़हबी आज़ादियां हैं, जिसकी ज़ेरसाया में हम चैन से सोते और हर तरह की तरक़्क़ी कर रहे हैं, उसको छोड़कर ख़्वाब में भी और किसी का ख़्याल करना मुसलमानों के लिये ख़तरनाक और दुनिया के आलिमों की राय में सब से बढ़कर कुफ़्र है।

औरंगज़ेब दूसरे मुसलमान राज्यों से मेल मिलाप ज़रूर करना चाहता था लेकिन इससे यह मतलब नहीं कि वह दूसरों का भरोसा करता था। उसका सारा जीवन स्वावलंबन का साकार स्वरूप है। अपनी भुजाओं से उसने सिंहासन प्राप्त किया और उन्हीं से वह उसकी रक्षा करता था। अपने ही पराक्रम से उसने मुसलमानी धर्म फैलाने का काम उठाया। औरंगज़ेब लड़कपन ही से कट्टर मुसलमान था। सिंहासन पर बैठने के पहले भी उसने अपनी कट्टरता का परिचय दिया था।

औरंगाबाद के नज़दीक सतारा में पहाड़ी पर एक मंदिर बना हुआ था जिसको 'ख़ुदा के फ़ज़्ल' से शाहज़ादा औरंगज़ेब ने तुड़वा दिया। शाहज़ादा ने अहमदाबाद और गुजरात के दूसरे परगनों में बहुत से मंदिर गिरवाए थे। सीतादास

जौहरी ने सरशपुर के क़रीब में चिंतामणि का मंदिर बनवाया था। शाहज़ादा औरंगज़ेब ने उसको तुड़वाकर उसकी जगह पर एक मसजिद बनवाई जिसका नाम पड़ा क़ूवतुल इसलाम। मंदिर में गाय की क़ुरबानी की गई।

बादशाह होने पर जवाबदेही का ख़्याल करके सन् १६५६ ई० में उसने बनारस के हाकिम को हुक्म दिया कि कोई हिंदू नया मंदिर न बनवाने पावे लेकिन पुराने मंदिर तोड़े न जायँ और न ब्राह्मणों और दूसरे हिंदुओं पर ज़ुल्म किया जाय। औरंगज़ेब का यह नम्रता का भाव शायद कुछ महीनों से अधिक क़ायम नहीं रहा। आप जानते हैं कि महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ का मंदिर तोड़ा था। लेकिन थोड़े ही दिन बाद भीमदेव ने फिर उसको बनवा दिया था। औरंगज़ेब ने इस नए मंदिर को तुड़वा दिया।

सन् १६६१ ई० में मीर जुमला कूचबिहार में गया। वहां पहुँचकर उसने मुहम्मद सद्दीक़ को हुक्म दिया कि हिंदुओं के कुल मंदिर गिरा दिए जायँ और उनकी जगह मसजिद तैयार कराई जायँ। तारीख़ ६ अप्रैल सन् १६६६ ई० में बादशाह ने कुल सूबेदारों को हुक्म दिया कि वे अपने अपने सूबे के कुल मंदिरों को गिरवा दें, हिंदू पाठशालाओं को बंद कर दें, पूजा पाठ को रोक दें। सन् १६६६ ई० में कई छोटे मोटे मंदिरों के अलावा काशी विश्वनाथ का मंदिर भी गिरवा दिया गया। सन् १६७० ई० में मथुरा में केशवराय

का मंदिर गिरवा दिया गया। राजा लोग खड़े होकर मुँह देखते रहे। छोटी बड़ी मूर्तियां जहांनारा की मसजिद में रखी गईं ताकि मुसलमान लोग अपने पवित्र चरणों से उनको रोज़ रोज़ कुचलें। मथुरा का नाम बदलकर इसलामाबाद रखा गया। उज्जैन का मंदिर भी गिरवाया गया। जितने मंदिर तोड़े और गिराए गए उनके अलग वर्णन के लिये स्थान और समय दोनों नहीं हैं। जब देश भर के लिये एक ही हुक्म था तब नाम किसका किसका लिया जाय। जगह जगह मुहतसिब मुक़र्रर किए गए जिनका ख़ास काम यह था कि हिंदुओं के मंदिरों को गिरवावें। ऐसे अफ़सरों की संख्या इतनी ज़्यादा थी कि इनके काम की निगरानी के लिये एक दारोग़ा मुक़र्रर किया गया था। हुक्म की पाबंदी कितनी सख़्ती से होती थी इसका ठीक पता इस बात से होता है कि पूर्व बंगाल और उड़ीसा के दूर के सूबों में भी अफ़सरों ने मंदिरों के गिरवाने के लिये ख़ास ख़ास आदमी तैनात किए।

सन् १६८० ई० में जयपुर राज्य के अंबर का मंदिर गिरवाया गया। अकसर ऐसा होता है कि लड़कपन में आदमी का हृदय कोमल होता है। ज्यों ज्यों दुनिया के झगड़े सामने आते हैं वह सख़्त होता जाता है। ऐसा भी होता है कितने आदमी लड़कपन की ना समझी से क्रूरता करते हैं लेकिन समझदार होने पर हाथ खींच लेते हैं। ऐसा तो प्रायः देखा

गया है कि आदमी लड़कपन की ना-तजरवेकारी और जवानी की उमंग में वहुत कुछ ग़लती कर जाता है लेकिन वृद्ध होने पर वह उनको सुधारता है, अपनी भूल पर पश्चात्ताप करता है। औरंगज़ेब इन तीनों तरह के आदमियों से निराले ढंग का था। आपने देखा है कि वादशाह होने के पहले उसने मंदिर को तुड़वाया और उसमें गोवध कराया। वादशाह होने पर मंदिर तोड़ने की आज्ञा देश भर में जारी हुई। ८० वर्ष से ऊपर की अवस्था में भी उसका तअस्सुव कौड़ी भर भी कम नहीं हुआ था। उस वूढ़ी उम्र में उसने हुक्म जारी किया कि सोमनाथ की पूजा कहीं फिर जारी न हो जाय। उसी उम्र में उसने एक जेनरल को दक्खिन के एक मंदिर तोड़ने के लिये तैनात किया। देवमंदिरों को गिराकर, उनमें गोवध करके, मूर्तियों को तोड़कर, मुसलमानों के क़दम शरीफ़ से उनको कुचलवा कुचलवाकर किस तरह हिंदुओं का दिल दुखाया गया, आपने देख लिया। लेकिन औरंगज़ेब के ज़ुल्म और ज़्यादतियों का यहीं अंत नहीं हुआ। औरंगज़ेब ने समझा होगा कि शायद पत्थर के वुतों की चोट हिंदुओं के दिलों पर असर न करे इसलिये खुद उनपर अत्याचार होने लगा!

क़ुरान की आज्ञा है कि जो मुसलमान नहीं हैं उनसे उस वक़्त तक लड़ाई की जाय जव तक वे आजिज़ी और ज़िल्लत के साथ अपने हाथ से काफ़िर होने का टैक्स अदा न करें।

इस टैक्स का नाम जज़िया है और टैक्स देनेवाले को ज़िम्मी कहकर पुकारते हैं। पहले पहल ख़ुद मुहम्मद साहब ने यह टैक्स लगाया। हिंदुस्तान में पहले पहल मुहम्मद क़ासिम ने ब्राह्मण छोड़कर और हिंदुओं पर जज़िया लगाया। फ़ीरोज़ शाह तुग़लक़ ने ब्राह्मणों के साथ ख़ास रिआयत करना मुनासिब नहीं समझा। शाहंशाह अकबर ने सन् १५७६ ई० में जज़िया उठा दिया। ठीक १०० वर्ष बाद औरंगज़ेब ने इसको जारी करके अपने कलंकित नाम को और भी कलंकित किया। कई मुसलमान विद्वान् कई तरह से जज़िया का समर्थन करते हैं और उससे कुछ दूसरा ही मतलब निकालते हैं। लेकिन दरबार की तवारीख़ से साफ़ मालूम होता है कि इस निंदनीय कर का मुख्य प्रयोजन मुसलमानी धर्म का फैलाना है। जो शुद्ध विश्वास और श्रद्धा से एक मत को छोड़कर दूसरे मत में प्रवेश करता है, उसको वहां जाने से कोई नहीं रोक सकता है और न रोकना चाहिए। लेकिन तलवार दिखाकर या रुपए का लालच देकर धर्म छुड़ानेवाले और उनके रोब और लोभ में फँसनेवाले दोनों नीच हैं। तारीख़ २ अप्रैल सन् १६७६ ई० में औरंगज़ेब ने जज़िया जारी करने का हुक्म दिया। औरंगज़ेब को जानते हुए भी लोग इस नई आज्ञा को सुनकर घबरा गए।

दिल्ली और उसके नज़दीक के कई सौ हिंदू इकट्ठे हुए। उन लोगों ने सुबह की सलाम के वक़्त गिड़गिड़ाकर जज़िया

छोड़ने के लिये अर्ज़ की लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। बादशाह जब जुमा मसजिद में जा रहे थे हिंदुओं की भीड़ रास्ते में इकट्ठी हुई। जब वे लोग हटाने पर भी नहीं हटे, हुक्म हुआ कि उनके ऊपर होकर हाथी चले जायँ। हिंदू कुछ दिन तक आंदोलन करते रहे लेकिन इसका कुछ असर नहीं हुआ। औरंगज़ेब अपने इरादे से हटनेवाला आदमी नहीं था।

एक तो जज़िया टैक्स वैसे ही सख़्त था, उसकी वसूली में और भी सख़्ती की गई। कहीं कहीं तो पुलिस के डंडे के ज़ोर से वसूली करनी पड़ी। बादशाह ने हुक्म दे दिया था कि और टैक्सों में रिआयत भले ही हो जाय लेकिन जज़िया की वसूली में ज़रा भी मुरव्वत नहीं होनी चाहिए। इस टैक्स से पीड़ित होकर जब लोग दक्खिन में भागने लगे, एक अफ़सर ने मुल्क के उस हिस्से में जज़िया उठाने के लिये अर्ज़ की लेकिन उसकी बात नहीं सुनी गई। समुद्र सूख जाय तो सूख जाय, हिमालय चलने लगे तो चलने लगे लेकिन औरंगज़ेब क़ुरान की आज्ञा को भंग कैसे कर सकता था! वसूली के लिये बहुत से अफ़सर तैनात किए गए। उनकी निगरानी के लिये सन् १६८७ ई० में एक इंस्पेक्टर जेनरल भी नियत किए गए। जज़िया से अच्छी आमदनी होने लगी। सिर्फ़ गुजरात के सूबे की वसूली ५ लाख रुपए थी। मनूची का कहना है कि जज़िया न दे सकने के कारण बहुत से हिंदू मुसलमान

हो गए। वादशाह को प्रसन्नता हुई कि उसकी कोशिश से मुसलमानों की संख्या वढ़ गई।

यह तो हुई जज़िया की कहानी। दूसरे टैक्सों में भी हिंदुओं पर ज्यादती की गई थी। जहां मुसलमानों पर २½ फ़ी सदी चुंगी लगाई गई थी हिंदुओं पर ५ फ़ी सदी लगी थी। सन् १६६७ ई० में मुसलमानों की चुंगी विल्कुल माफ़ कर दी गई। लेकिन अभागे हिंदू वदस्तूर पिसे जाते रहे।

ये सव ज्यादतियां हिंदुओं को मुसलमान वनाने के लिये की गई थीं। मुसलमान होने पर लोगों को इनाम दिए जाते थे, अच्छी अच्छी नौकरियां मिलती थीं। माल के मुहकमे की नौकरी करके वहुत से ग़रीव हिंदू अपना गुज़र करते थे। औरंगज़ेव ने इस पर भी कुठार चलाया। सन् १६७१ ई० में हुक्म हुआ कि वादशाही ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करनेवाले सव के सव मुसलमान हों। तालुक़ेदारों और सूवेदारों को हिदायत हुई कि वे कोई हिंदू पेशकार या वासिल-वाक़ीनवीस न रखें।

मार्च सन् १६९५ ई० में हुक्म हुआ कि राजपूतों को छोड़-कर दूसरे हिंदू न तो पालकी, हाथी और क़लां रास घोड़े पर चढ़ने पावें और न हथियार वांधने पावें।

हिंदू तिथि और त्योहारों पर अक्सर मेले हुआ करते हैं जिनमें दूर दूर के लोग भक्ति भाव से आते और पूजन स्नान करते हैं। खेल तमाशे और गाने वजाने से लोग जी वहलाते

हैं। बहुत दिनों के विछुरे लोगों की अक्सर भेट हो जाया करती है। ऐसे स्थानों में ज़रूरत की चीज़ें भी खरीद ली जाती हैं। औरंगज़ेव को हिंदू मज़हव से नफ़रत थी, लोगों के आमोद प्रमोद को भी वह नहीं सह सकता था, काफ़िरों की ज़रूरी बातों की भी तामील वह नहीं देख सकता था। इसलिये सन् १६६८ ई० में मेले बंद हुए। होली और दिवाली में भी रुकावटें डाली गईं। हिंदुओं पर जो ज़ुल्म किए गए थे उनका संक्षेप वर्णन किया गया। उन अत्याचारों का पूर्ण वर्णन देने से अलग एक पोथा बन जायगा। सूबे सूबे, ज़िले ज़िले, नगर नगर, गांव गांव, गली गली हमारे मंदिर तोड़े जाते थे, मुसलमान होने के लिये हम फुसलाए और दवाए जाते थे, न मानने पर मारे और काटे जाते थे। घोड़े, हाथी और पालकी पर हम चढ़ने नहीं पाते थे, जो हमसे विद्या, चरित्र और दूसरे गुणों में कम थे लोहे के ज़ोर से हमारे सर पर वैठा दिए गए थे। हमारे घर में हमारी निर्बलता के कारण मुग़ल अधिकार जमाए बैठे थे, मज़े उड़ाते थे, हमको दुतकारते थे और हम कुत्ते विल्ली की तरह उनके पैरों के पास पड़े थे। भारतवर्ष वही था जहां हमने शताब्दियों तक राज्य किया था, हमारे शरीर में रक्त भी उन्हीं जगद्विजयी पूर्वजों का था, हमारे हाथ पैर और वाहरी टीम टाम भी वैसे ही थे। श्रावणी में हम रक्षावंधन वांधते थे लेकिन उस राखी में हिंदू जाति को एक में गूंथ देने की शक्ति वाक़ी नहीं रह

गई थी, रामलीला हम बदस्तूर मनाते थे लेकिन हमारे रामचाए में इतना बल कहां कि अत्याचारी रावण के दस शिर बेधन कर वापस आ जाते, दिवाली हम करते थे लेकिन हमारे दीपकों में वह प्रकाश नहीं जो संसार की आंखों को चकाचौंध कर देता था, होली भी हम रो पीटकर करते ही थे लेकिन हमारा गुलाल आर्य जाति को राष्ट्रीयता के एक रँग में रँगने में समर्थ नहीं था। जन्माष्टमी में भगवान् का जन्मोत्सव मनाते थे लेकिन वह प्रचंड ज्योति कहां जिसके देखते देखते परतंत्रता की बेड़ियां टूटकर गिर पड़ें, वे चरण भी कहां जिनके छूने से हमारे संकट की सरिता सूख जाय, वह मोहन की मुरली कहां जिसकी तान हमको देश-ममता के मद में मस्त कर देती। हिंदू जाति निष्प्राण हो गई थी, केवल बाहरी ढांचा रह गया था, भला उससे मुग़ल लोग या कोई भी क्यों डरने लगे थे। इसीलिये हम पर आघात पर आघात हुए, अत्याचार के सिल और बेईमानी के बट्टे से नवधाभक्ति में मग्न हिंदू पीसे गए, इनको रगड़कर नौरतन की चटनी बनाई गई।

औरंगज़ेब का ज़ुल्म हिंदुओं तक महदूद नहीं था। सन् १६६७ ई० में एक पुर्तगाली पादरी को फांसी दी गई। पहले तो वह डर से मुसलमान हो गया था लेकिन डर से धर्म छोड़ने की इस बात को उसकी आत्मा ने क़बूल न किया, इस लिये वह फिर ईसाई हो गया। पादरी साहब की इस तुनुक-

मिज़ाजी को औरंगज़ेब की आत्मा नहीं सह सकती थी। इसलिये बादशाह के हुक्म से पादरी साहब को औरंगाबाद में प्राणदंड दिया गया।

कितने मुसलमान भी औरंगज़ेब के तअस्सुब के शिकार हो गए। इस कट्टर मुसलमान बादशाह की नज़रों में सिर्फ़ खुदा रसूल और कलाम मजीद का मान लेना काफ़ी नहीं था, मुसलमानी मज़हब की हर एक बात को जब उसी तरकीब और तरतीब से माने जैसा बादशाह आलमगीर मानता था तब आदमी पक्का मुसलमान समझा जाता था। इतने पर भी अगर उसपर किसी तरह का पोलिटिकल शुबहा हुआ, फ़ौरन कोई मज़हबी कच्चाई भी निकल आती थी। ऐसे लोगों में वे फ़क़ीर और महात्मा लोग थे जिनको दारा मानता और जानता था। शाह मुहम्मद नामक एक अच्छा संत था। वह बदख़्शां का रहनेवाला और लाहौर के मशहूर साधू मियां मीर का चेला था। कश्मीर में उसने अपनी कुटी बनाई। उसके मुँह से ज्ञान, वैराग्य और वेदांत की अमूल्य शिक्षाएं और मनोहर पद्य निकलते रहते थे। दूर दूर के लोग उसके दर्शन के लिये आते थे। दारा और जहांनारा की तरफ़ से भी उसकी बड़ी ख़ातिर होती थी। बादशाह होने पर औरंगज़ेब ने जहां दारा के और दोस्तों से बदला लिया, फ़क़ीर पर भी उसकी कुदृष्टि पड़ी। लाहौर में आकर बड़ी मुसीबत में शाह मुहम्मद ने अपने दिन काटे। सन्

१६६१ ई० में उसका देहांत हो गया और अपने गुरु मियां मीर की क़ब्र के पास वह दफ़न किया गया।

सूफ़ी मज़हब के नाम से हमारे पाठक अपरिचित न होंगे। वह मुसलमानी लिबास में अद्वैत वेदांत का दूसरा स्वरूप है। वेदांत के "अहं ब्रह्मास्मि" "शिवोहं" इत्यादि वाक्यों के भाव को लेकर सूफ़ी महात्माओं ने कितने अच्छे अच्छे ग्रंथ और पद बना डाले हैं। शंकर भगवान्, महात्मा रामकृष्ण, स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ महाराज ने वेदांत-शिक्षा को खूब अच्छी तरह दर्शाया है, लेकिन इन सब से पहले खुद योगिराज कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के रणस्थल में वेदांत के तत्त्व को गीतारूप में संसार को भेंट किया है। जीव अमर है, अजर है। न वह जन्म धारण करता है, न वह बालक, युवा और न वृद्ध है। सुख दुःख का भोगनेवाला, बंधनों में भटकनेवाला वह कोई बंदी नहीं है, वह स्वयं परब्रह्म चिदानंद, शांतिस्वरूप, अनाम, अनीह, अनंत, अपार और अच्युत है। पंचभौतिक तत्त्वों के बने हुए इस शरीर का उपयोग करते हुए भी वह इससे परे है। स्थूल और सूक्ष्मादि अनेक देह उसके मोटे पतले भिन्न भिन्न प्रकार के वस्त्रमात्र हैं। माता, पिता, भाई, बंधु, स्त्री और पुत्र कोई किसी का कुछ नहीं है। इसका पता भी तो नहीं है कि कौन कितने दफ़े किसका पिता और कितने बार किसका पुत्र हो चुका है। इसी लिये महात्मा लोग संसार में रहकर भी संसार के

नहीं होते हैं। कमल का पत्ता जल में रहकर भी नहीं भीगता है। जब संसार के नाते रिश्ते थोड़ी देर के तमाशे हैं और जब जीव मरता नहीं केवल पुराने कपड़े उतारकर नए धारण कर लेता है, फिर शोक किस बात का, किसके मरने पर ग़म क्यों मनाया जाय, तुच्छ शरीर से निकलकर संसार के विराट् रूप में प्रवेश करने की खुदाई को जुदाई क्यों माना जाय! इसीलिये संत लोग परिवार में रहते हुए भी सदा उसको त्यागने के लिये सन्नद्ध रहते हैं, वियोग होने पर वे अपने योग के पंखों पर ज्ञान-गगन में मँडराने लगते हैं। चिड़िया टहनी पर बैठती ज़रूर है लेकिन टहनी कट जानें पर वह उसके साथ ज़मीन पर नहीं गिरती है, ऊपर आकाश-मंडल में उड़ने लगती है। साधू लोग धन दौलत की भी परवा नहीं करते हैं। जब दुनिया ही फ़ानी है तो उसके मालटाल का क्या ठिकाना है। फिर जो जगत् भर के लोगों को अपना स्वरूप मानता है वह संसार के सर्वस्व को अपना मानते हुए अपनी शान में मस्त है। बादशाह होने की वजह से आप ज़रूर बड़े कहे जायँगे लेकिन आपसे कहीं बढ़कर वह है जिसने आपकी तरह असंख्य बादशाहों की सल्तनत दुनिया को माफ़ी बख़्श दी है। अमेरिका के प्रेसीडेंट ने महात्मा रामतीर्थ महाराज से कुछ मांगने के लिये कहा। राम शाहंशाह ने हँसते हुए कहा—

"बादशाह दुनिया के हैं मुहरे मेरे शतरंज के।

दिल्लगी की चाल हैं सब शर्त सुलहो ज़ंग के॥"

ऐसे देवताओं के लिये मौत भी एक मज़ाक़ का सामान है। भीष्म पितामह ने शरशय्या पर धर्मोपदेश दिए, हज़रत मसीह ने सूली पर भी अपने प्रतिवादियों के लिये प्रार्थना की, महर्षि सुक़रात ने आनंद से विष का प्याला मुँह में लगाया। रामतीर्थ जी महाराज ने सच्चे हिंदू की तरह भक्ति-भाव से अपना शरीर गंगा मैया की भेट कर दिया।

"गंगा मैं तेरी बलि बलि जाऊं।

हाड़ मांस तुझे अर्पण कर दूं यही फूल बताशा लाऊं

रमण करूँ मैं शतधारा में न तो नाम न राम कहाऊं"

जैसा कहा जा चुका है वेदांती और सूफ़ी में महज़ नाम और रूप का फ़र्क़ है। सूफ़ी ख़ुदा की याद में मस्त रहता है। बाग़ में, गुल में, बुलबुल और सरो में, कामिनी के चांद से मुखड़े में, मस्तानी तानों में जहां कहीं वह देखता है यार की सूरत, मोहन की माधुरी मूरत नज़र आती है। जब तक मंज़िले मक़सूद नहीं पहुँचे हज़ार झगड़े हैं, रास्ते की दिक़्क़तें और लाख उधेड़ बुन हैं लेकिन जब जो जिसका था उससे मिलकर एक हो गया फिर चिंता किस बात की, योग कैसा, भोग कैसा, रोज़े और नमाज़ कैसे।

"देखते ही यार के शिकवे सारे भूल गए।

बस गूंगे बनकर बैठ गए कलमा कलाम भूल गए॥"

प्यारे प्रीतम के प्रेम की लहर चारों तरफ़ लहरा रही है, देखकर आंखें सहम सी गई हैं।

"दरियाय इश्क़ बह रहा लहरों से बे-शुमार"

सरमद नाम का एक मशहूर सूफ़ी था। दारा इसको मानता था इसलिये यह भी औरंगज़ेब का क्रोधभाजन हुआ। औरंगज़ेब की आज्ञा से मक्कार मुसलमानों की एक कमेटी सरमद का न्याय करने को बैठी। चार्ज लगाया गया कि वह नंगा रहता है। अगर असल में औरंगज़ेब का यही मतलब था तो नागे बैरागे पहले क़त्ल होने चाहिए थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सरमद का बड़ा भारी और मुख्य अपराध तो यह था कि वह दारा का मित्र था। दारा के मरने पर भी औरंगज़ेब डरता था कि वही सरमद अपनी क़ूवत से कुछ बला न गिराए। औरंगज़ेब को पता नहीं था कि संत लोगों के लिये न कोई मित्र है और न कोई शत्रु और न संसार को तृण समान जाननेवाले महात्मा को औरंगज़ेब की सल्तनत और शान की परवाह थी। अधम औरंगज़ेब के अन्यायी न्यायकारियों ने फ़क़ीर को प्राणदंड की आज्ञा दी। लेकिन जो इन लोगों के लिये बड़ी भारी चीज़ थी वह सरमद के लिये महज़ दिल्लगी थी। जो दिन रात प्रीतम के प्रेम में मतवाला रहता था वह कितने दिन तक उसका वियोग सह सकता था!

"कौन सी है वह जुदाई की घड़ी जो उम्र भर

आरज़ूए वस्ल में यह दिल भटकता ही रहा"

लेकिन—

"जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू"

जिसका जिसपर प्रेम होता है वह अवश्य उससे मिलता है

"पा गया बस चेहरए मक़सूद को लैली के वह।
जो हुआ है मिस्ल मजनू बुलबुले गुलज़ारे इश्क़॥"

मौत की आज्ञा फ़क़ीर को सुनाई गई। उसके आनंद का ठिकाना नहीं। इतने दिन अकेले रहनेवाले, जुदाई में तपनेवाले सरमद का अब व्याह होगा। व्याह होगा ऐसे पुरुष से जिससे बढ़कर संसार में या कहीं भी न कोई हुआ और न कोई होगा। वह समझता था—

"भूली योवन केर मद अरी बावरी वाम।
यह नैहर दिन दोय को अंत कंत से काम॥"

मंडप रूपी सूली तैयार की गई, वहीं सरमद का उसके प्यारे का मिलन होगा। पल पल युग के समान बीत रहा है, अपने अवगुणों का ध्यान करके पैर आगे नहीं पड़ता है, कलेजा दहल रहा है, आनंद, भय और लज्जा से रोमांच हो आए हैं, प्रीतम के दिव्य स्वरूप का ध्यान करके आँखें झप जाती हैं। देखते देखते घड़ी आ गई, ओफ़ कैसा दिव्य स्वरूप है, क्या बांकी झांकी है,

"तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत,
हम जहाँ में तेरी तसवीर लिए फिरते हैं।"

देखते देखते विवाह की घड़ी आ गई। अब प्रीतम सरमद के सर में सिंदूर देंगे, उसके सर में लालिमा की रेखा दौड़ेगी। ऐसे बड़े का ब्याह फिर चुटकी से ज़रा सा सिंदूर थोड़े ही दिया जायगा। प्रेम में भींगे हुए, मस्ती में चूर प्रेमियों की शादी! सर्वांग लाल करना होगा, खड्ग से शृंगार किया जायगा, सरमद माथा खोले, सर नीचा किए, संकोच से सिकुड़ा हुआ खड़ा है, प्यारे ने आकर हाथ से ठुड्डी पकड़ मुँह ऊपर उठा दिया, आंखें मिल गईं, अंतर न रहा, बिछुड़े हुए मिलकर एक हो गए, जो तुम वही हम, और जो हम वही तुम, जब ऐसी बात है फिर हम और तुम का भेद कहां!

"दरस बिनु दूखन लागे नैन।
जब से तुम बिछुरे मेरे प्रभु जी, कबहुँ न पायों चैन"

"हमरी उमिरिया होरी खेलन की,
पिय मोसे मिलि के बिछुरि गयो हो।
पिय हमरे हम पिय की पियारी,
पिय बिच अंतर परि गयो हो॥
पिया मिलैं तब जियों मोरी सजनी,
पिय बिन जियरा निकरि गयो हो।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी,
बीच डगर पिय मिलि गयो हो॥
धरमदास बिरहिन पिय पाये,

चरन कमल चित गहि रहो हो।"

अब सूली पर चढ़ा सरमद और सामने उसका मनचोर माखनचोर हरी,

"यार को हमने जा बजा देखा,
कहीं ज़ाहिर कहीं छिपा देखा ॥"

"गुम कर खुदी को तो तुझे हासिल कमाल हो"

खड्ग नें अपना काम किया, सरमद और उसके प्रीतम एक में मिल गए। प्रेम के गीत गाते हुए सरमद विदा हो गया।

"साक़ी ने अपने हाथ दिया भरके जाम सोज़,
इस ज़िंदगी के कैफ़ का टूटा खुमार आज ॥"

महात्मा इस लोक से हँसते हँसते विदा हो गया। उसका नश्वर शरीर नाश हो गया लेकिन अपना अमर नाम वह छोड़ गया, और छोड़ गया हमारे लिये "अनलहक़" का उपदेश। सज्जन लोग दूसरों के लिये कष्ट उठाते हैं, कष्ट को वे कष्ट ही नहीं समझते हैं। हमारे लिये वे मारे काटे जाते हैं आग में जलाए जाते हैं। आग में तपाए न जायँ तो सोने की परीक्षा कैसे हो! खराद पर चढ़े विना हीरे की जांच कैसे हो!

किया दावा अनलहक़ का हुआ सरदार आलम का।
अगर सूली पै न चढ़ता तो वह मंसूर क्यों होता॥

अत्याचार का मुख्य प्रयोजन होता है लोगों को दबाना लेकिन परिणाम इसका उलटा होता है। दुनिया के इतिहास

में जहां कहीं आप देखेंगे, अत्याचार से असंतोष का फैलना पाया जाता है। रगड़ लगने से चंदन-वन में भी आग लग जाती है। उसी तरह औरंगज़ेब के ज़ुल्म ने मरी हुई हिंदूजाति को सचेत कर दिया। अकबर की कुटिल नीति के क्लोरोफ़ार्म से जो बेहोश हो गए थे औरंगज़ेब ने झोंके दे देकर उनको होश में ला दिया। साधू सिक्ख प्रवल योधा हो गए, लुटेरे मरहठे फ़तहयाब दुश्मन हो गए, अपनी मर्यादा से गिरे हुए राजपूत फिर कमर कसकर खड़े हो गए। सिक्खों के उत्थान, महरठों के संगठन और राजपूतों के असंतोष का वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

इनके अतिरिक्त सतनामियों ने भी अत्याचार सहकर सर उठाए थे। एक मुसलमान सिपाही ने कुछ सतनामी किसानों को सताया जिससे पीड़ित होकर उन लोगों ने उसको दंड दिया। मुसलमानी राज्य में मार खाकर भी मुसलमान सिपाही को मारने का हिंदुओं को क्या हक़ था! सतनामियों को दंड देने के लिये कुछ सिपाही भेजे गए जो परास्त हुए। अंत में एक बड़ी सेना दंड देने के लिये भेजी गई। बहादुर सतनामी सामान के न होते हुए भी बड़ी वीरता से लड़ते रहे। अंत में परास्त हुए और २ हज़ार की संख्या में मारे गए।

तीसरा अध्याय ।

सिक्खों का उदय और अस्त ।

वनैले पशु उस समय तक वाटिका को हानि पहुँचा सकते हैं, जब तक उसके मालिक या रखवाले को पता न चलजाय। मालूम हो जाने पर वह न सिर्फ़ पशु को बाहर निकालकर अपने बाग़ को बरबाद होने से बचावेगा बल्कि मवेशी को सज़ा भी देगा। इस विश्ववाटिका का माली सर्वांतरयामी है। उसके उपवन और फूलों को आप हानि नहीं पहुँचा सकते हैं क्योंकि वह फ़ौरन आपको पकड़ लेगा, स्वयं प्रकट न होते हुए भी वह आपको उचित दंड देगा। अगर विश्वास न हो तो संसार का इतिहास पढ़िए। जब, जहां कहीं जिस किसी ने धींगा धींगी की उस पर मालिक का कोप हुआ, उस जगदीश्वर का कोई नौकर अन्याय मिटाने के लिये प्रगट हुआ। ऐसा ही एक अवसर उपस्थित हुआ था जब महात्मा नानक जी ने अवतार लिया।

सिकंदर लोदी का हाल आपने इस किताब के पहले खंड में पढ़ा है। उसने कितने बड़े बड़े अत्याचार किए थे यह भी आपने देखा है। उसके अन्यायों से हिंदूजाति जब काँप रही थी, लाहौर के पास तिलौड़ी गाँव में कालूराम खत्री के घर,

सिक्ख पंथ के संस्थापक, हिंदूजाति के पुनरुद्धारक महात्मा नानक पैदा हुए।

बड़े होने पर खुद नानक जी को इस अन्यायी बादशाह का शिकार होना पड़ा। दिल्ली जाने पर कई साधुओं के साथ महात्मा जी गिरिफ़्तार हुए लेकिन बाद में बादशाह ने कुछ सोचकर इन लोगों को छोड़ दिया। जिस अन्याय के मिटाने के लिये गुरु पैदा हुए थे उसका अनुभव आपने स्वयं कर लिया। आप अगर चाहते तो अपने सत्य और धर्म के बल से हिंदूजाति को खड़ा कर देते। लेकिन आप समझते थे कि हिंदू और मुसलमान दोनों परम पिता की संतान हैं। भाई भाई की लड़ाई से न तो संसार का लाभ हो सकता है और न जगतपिता प्रसन्न रह सकता है।

आपने प्रेम का रास्ता लिया। आपने चाहा कि दोनों जातियों को बतला दें कि दोनों का ईश्वर एक है जो भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उसी एक मालिक की सेवा करना आपस में मिल जुलकर रहना दोनों का कर्तव्य है। महात्मा जी को आशा थी कि उनका उद्योग सुफल होगा। लेकिन गुरु को समझ लेना चाहिए था कि सिद्धांत की दृष्टि से मेल बहुत अच्छी चीज़ है लेकिन व्यवहार में देखा जाता है कि कमज़ोर और ताक़तवर की दोस्ती पहले तो होती नहीं है अगर होती भी है तो बहुत दिन तक नहीं टिकती है। ऐसी दशा में व्यक्तिगत मैत्री कहीं हो भी जाय,

लेकिन निर्बल और सबल जातियों का मिलकर एक होना असाध्य है। संसार के इतिहास इस बात के साक्षी हैं।

कठिनाइयां उठाते हुए भी महात्मा जी हताश नहीं हुए।

दूसरे गुरु अंगद, तीसरे अमरदास, चौथे रामदास ने शांति से धर्मोपदेश किया। समय समय पर विघ्न पड़ते रहे लेकिन वे ऐसे नहीं थे जिनसे कोई विशेष कष्ट हो। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के समय से फिर आपदाओं का श्रीगणेश हुआ। आप देख चुके हैं कि सिकंदर लोदी के समय में गुरु नानक जी ने अवतार लिया था। सिकंदर का बेटा इबराहीम लोदी नाम मात्र का बादशाह था। उसके राज्य में हिंदुओं पर कोई अत्याचार नहीं किया गया। बाबर और हुमाऊं ने भी हिंदुओं पर अन्याय नहीं किया। अकबर का तो कुछ पूछना ही नहीं है। इस दूरदर्शी बादशाह ने अपने समय के गुरुओं का बड़ा सत्कार किया। इसलिये सिक्ख लोग गुरु नानकदेव की शांति और प्रेम शिक्षा के अनुकूल काम करते रहे।

गुरु अर्जुनदेव के समय में जहांगीर बादशाह था। उसमें न तो अकबर की दूरंदेशी थी और न बादशाहत पर अच्छी तरह से क़ाबू था। इसलिये दिल का अच्छा होते हुए भी उसके समय में अकसर ऐसी धींगा धींगी हो जाती थी, जिसका बादशाह को कुछ भी पता नहीं रहता था। कभी कभी ऐसा भी होता था कि लोग बादशाह को धोखा देकर

उससे अन्याय करा देते थे। गुरु अर्जुनदेव के संबंध में भी ऐसी ही एक घटना हुई। बादशाही सेवा में चंडूशाह नाम का एक आदमी था। वह गुरु जी के पुत्र से अपनी लड़की ब्याहना चाहता था। लेकिन अर्जुनदेव जी कब एक अन्यायी की पुत्री को अपने घर में ला सकते थे! नाराज़ होकर चंडू ने बादशाह को बहकाकर गुरु पर दो लाख रुपए जुर्माना कराए। बाद में इसी नीच ने ज़मानत पर उनको छुड़ा लिया और छुड़ाकर अपने घर लाया। उसने समझा कि अब गुरु जी अहसानों से दबकर और अन्याय से डरकर उसका संबंध स्वीकार कर लेंगे। लेकिन गुरु जी टस से मस न हुए। नराधम चंडू ने बड़ी दुर्दशा से आपका प्राण लिया। सिक्खों के अभ्युदय में गुरु अर्जुनदेव का पहला बलिदान हुआ। गुरु नानक का लगाया हुआ जो कोमल वृक्ष धीरे धीरे बढ़ रहा था, गुरु अर्जुनदेव के रक्त से सिंचित होकर, महात्मा के पाक खून की खाद पाकर एक दम लहलहा उठा। सिक्ख समाज शोक, चिंता और क्रोध से अचानक उठ बैठा। उसने समझ लिया कि धर्म का चक्र निवृत्ति के चलाए नहीं चल सकता है। उसके ठीक ठीक परिचालित करने के लिये, गीता में बतलाए हुए भगवान के प्रवृत्ति मार्ग पर पदार्पण करना पड़ेगा।

पिता के मरने पर हरगोविंद जी ११ वर्ष की अवस्था में छठे गुरु हुए। आपने अपनी कमर में दो तलवारें बाँधीं।

पूछने पर आप जवाब देते थे कि एक तलवार पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये है और दूसरी मुसलमानी राज्य की जड़ काटने के लिये है।

इस नौजवान गुरु ने सिक्खों में नई जान डाल दी। आप न सिर्फ़ बहादुर थे बल्कि दूरंदेश भी थे। जहांगीर बादशाह को खुश करके आपने चंडूशाह से अपने बाप का बैर लिया। लेकिन बाद में जहांगीर ने नाराज़ होकर इनको ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया। गुरुजी बारह बरस तक कारागार दंड भोगते रहे। छुटने पर आपने कई बार मुग़लों से युद्ध किया और उनको परास्त किया। सन् १६४५ ई० में आप का देहांत हो गया।

इसके बाद हररायदेव सातवें गुरु हुए। आपने बड़ी शांति से धर्मप्रचार किया। दाराशिकोह आप को बहुत मानता था इसलिये तख़्त पर बैठते ही औरंगज़ेब ने इनको अपनी सभा में बुलाया। आपने खुद न जाकर अपने लड़के रामराय को भेजा। औरंगज़ेब ने रामराय को अपने दरबार में रोक रखा।

गुरु के मरने पर रामराय गद्दी पर बैठना चाहता था। गुरु अपने छोटे लड़के हरकिशन के लिये कह गए थे। झगड़ा बादशाह तक गया। औरंगज़ेब ने समझा कि रामराय दर-बार में रहकर बहुत सा भेद जान गया है। उसको सदा के लिये अपने पास रोक रखने से सिक्ख डरते रहेंगे। और

ज़रूरत पड़ने पर उससे भेदिए का काम लिया जा सकता है। इसलिये बादशाह ने भी हरकिशन के लिये राय दी। हरकिशन जी सिक्खों के आठवें गुरु हुए। आप बड़े बुद्धिमान् थे लेकिन सिक्ख समाज को खड्गवान गुरु की आवश्यकता थी। बालक हरकिशन ८ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हुए।

हरकिशनदेव के बाद तेग़बहादुर जी नवें गुरु हुए। नाम के अनुकूल गुण भी आपमें थे। जहां आपमें दया शांति और ईश्वरभक्ति थी वहां इन अमूल्य रत्नों की रक्षा के लिये आपमें साहस, वीरता और निर्भीकता भी थी। सिक्ख इतिहास में आपका बड़ा भारी महत्त्व है। गुरु गोविंदसिंह जी के पिता होने के कारण आप का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आप ने न सिर्फ़ ऐसा अपूर्व रत्न जन्माया बल्कि उसको अपने उद्देश्य के अनुकूल तैयार भी किया। आप जानते हैं कि रामराय को औरंगज़ेब ने अपने दरबार में रोक लिया था। सिक्ख जाति के उस विभीषण से काम लेने का अवसर अब आया। जैसे भक्तिपूर्ण कुटिल शब्दों से रामचंद्र जी को समझाकर विभीषण झटपट समुद्र का पुल बँधवाकर उन को लड़ाई के लिये चढ़ा ले गया वैसे ही रामराय ने औरंगज़ेब के कान भर भरकर उसको गुरु तेग़बहादुर के सताने के लिये उद्यत कर दिया।

गुरु जी बहुत दिनों तक टालते रहे लेकिन अंत में बलिदान की घड़ी आगई। गुरु अर्जुनदेव के रक्त का सींचा हुआ

सिक्ख समाज का वृक्ष अब मुरझाया जा रहा था। आवश्यकता थी कि वह फिर सींचा जाय और अच्छी तरह सींचा जाय। गुरु तेग़बहादुर से बढ़कर और कौन इस काम के लिये उपयुक्त था। औरंगज़ेब ने गुरुजी को अपने दरबार में बुलाया। चलते वक़्त आपको सब भेद मालूम हो गया था। आपने अपनी तलवार पुत्र गोविंदसिंह को देकर विदाई ली और बलिदान का सब हाल उससे कहदिया। आपने पुत्र को यह भी समझा दिया कि जो बेटा बाप का बदला न ले वह बेटा नहीं है।

'शरीर नश्वर हैं', 'आत्मा अमर है' इन पवित्र भावों को लेकर गुरु जी औरंगज़ेबी दरबार में पहुँचे। जिसने बे-रहमी से बाप को क़ैद कर लिया था, भाइयों को क़त्ल कराते हुए जिसके दिल में भूलकर भी दया नहीं आई थी, उसी राक्षस के सामने गुरु तेग़बहादुर निःशस्त्र जा रहे हैं। चलते वक़्त तलवार आप गोविंदसिंह को दे आए थे लेकिन धर्म की तलवार आपकी कमर ही में नहीं सर्वांग में लटक रही थी।

दरबार में पहुँचने पर बादशाही आज्ञा हुई "इसलाम या मौत"। गुरुजी ने मौत को लिया। पाप, कपट, दग़ाबाज़ी और स्वार्थ के मत परिवर्तन से आपने मृत्यु को हज़ार गुना अच्छा समझा। जल्लाद तलवार लेकर आ गया। आनंद से गुरु ने अपना मस्तक आगे कर दिया।

जिस काम से मरी हुई आर्य जाति जीवित हो, वशिष्ठ, अंगिरा और भृगु के वेद मंदिर का जिससे पुनरुद्धार हो, मनु, दलीप और दशरथ, कृष्ण और भीष्म के धर्म-मार्ग की जिससे रक्षा हो, गो ब्राह्मण का जिससे त्राण हो, आर्य धर्म को जो सजीव रख सके उस काम के लिये गुरु तेग़-बहादुर जन्म जन्म अपना मस्तक देने को तैयार थे।

जल्लाद ने तलवार गिरा दी, सर धड़ से अलग हो गया। गुरु जी के गले में जो काग़ज़ का टुकड़ा बँधा था उस पर लिखा था "सिर दिया पर सार न दिया"।

पिता की मृत्यु का समाचार पाकर बालक गोविंदसिंह बहुत दुखी हुआ। लेकिन इनका दुख ऐसा नहीं था कि बैठकर रोते। वहां तो खेद के साथ साथ क्रोध और दंड देने की अभिलाषा का मेल था। आपने एक बार फिर बदला लेने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। सिक्ख वीरों को इकट्ठा करके आपने अपनी इच्छा प्रकट की। सबने आपका अनु-मोदन किया।

गोविंदसिंह सिक्खों के दसवें गुरु या दसवें बादशाह हुए। आपने जो महान व्रत अपने सामने रखा था उसके लिये रात दिन मिहनत करते रहे। सबसे पहले आपने सिक्ख धर्म के गूढ़ तत्वों पर विचार करते हुए उसका ज्ञान प्राप्त किया। आप जानते थे कि सिक्ख धर्म वैदिक हिंदू धर्म का अंग मात्र है, इसलिये आपने शास्त्रों का भी अध्ययन किया।

प्रतिवादी के भी रहस्य को जान लेना आवश्यक है इसलिये आपने मुसलमानी धर्म ग्रंथों को भी देखा। सब कुछ करते हुए भी आपने सोचा कि शस्त्र के बिना शास्त्र कुछ नहीं कर सकता है। जब तक विघ्नकर्ता पशुओं से वाटिका की रक्षा करने के लिये किनारे किनारे काँटेदार पौधे न लगाए जायँ, न तो गुलाब की कोमल कलियां रह जायँगी, न उनके चटकने का आनंद स्वर होगा और न फूल का मनोहर सुगंध आपका मन और हृदय मुग्ध करेगा।

आपने सोच लिया कि हिंदू जाति के नाश का मुख्य कारण यह है कि उसमें क्षात्र-धर्म नहीं रहा। देश को स्वामियों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सिंहों की।

शेर गोविंदसिंह ने देश के लिये सिंह सपूत पैदा करने का बीड़ा उठाया। वैसे तो गुरु अर्जुन और गुरु हरगोविंद ने भी सिक्खों के संगठित करने का काम लिया था लेकिन उस समय काल और पात्र का अभाव था। उनमें न तो गोविंदसिंह की योग्यता और उनका पराक्रम था और न सिक्ख लोग उस समय उतने तैयार थे जितना गुरु तेगबहादुर की मृत्यु पर हो गए। परमात्मा जब जैसी ज़रूरत देखता है, वैसे ही पात्र उत्पन्न कर देता है। इस काम के लिये गुरु गोविंदसिंह से बढ़कर उपयुक्त पुरुष दूसरा नहीं था।

शास्त्र पढ़कर और शस्त्र का अभ्यास करने पर भी आपने

सोचा कि जब तक जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न न हों, कोई काम नहीं हो सकता है, बृहस्पति के समान विद्वान् और बालि के समान बली होकर भी एक मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है। ऐसी दशा में कोई कार्य उठाने के पहले हिंदू जाति का संगठन होना चाहिए। वैर भाव और भेद मिटाकर ऐक्य का संचार करना चाहिए। सब को एक भाव, एक भेष और एक भाषा के तिरंगी तागे में गूंथकर माला बनाना पड़ेगा। समग्र हिंदू जाति को एक दूसरे के दुख में दुखी और सुख में सुखी होना पड़ेगा। आर्य मात्र को आर्य आदर्शों, आर्य सभ्यता, आर्य जनता और आर्य जातीयता के लिये उठना, चलना, अड़ना और बलिदान करना पड़ेगा। गुरु गोविंदसिंह ने सोच लिया कि जब तक यह नहीं तब तक सब बातें व्यर्थ हैं।

इन विचारों से प्रेरित होकर गुरु गोविंदसिंह जी ने हिंदू-जाति से भेदभाव उठा देने का बीड़ा उठाया। आपने कहा कि चारों वर्ण बराबर हैं। आपका मतलब था कि हिंदूजाति के लिये उनमें से प्रत्येक आवश्यक है। उनमें से एक के बिना भी हमारा काम नहीं चल सकता है। पांच भिन्न भिन्न जातियों के पांच आदमी आपके पहले सिक्ख (शिष्य) हुए। उनमें फुर्तीलापन लाने के लिये केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ का प्रचार किया गया। सिक्ख लोगों की संख्या रोज़ रोज़ बढ़ने लगी। उनके लिये हथियार इकट्ठे किए गए।

पहाड़ी स्थानों में दो तीन क़िले बनवाए गए।

इधर गुरु हिंदूजाति के जगाने की तैयारी कर रहे थे, उधर दूरदर्शी औरंगज़ेब इनका मतलब समझ समझकर इनके परास्त करने का उपाय सोच रहा था। तब तक पहाड़ी राजाओं को जीतकर गोविंदसिंह जी ने अपना बल बहुत बढ़ा लिया। बादशाह ने सोचा कि अब चुप रहने से रोग असाध्य हो जायगा। इसलिये सिक्खों के मुक़ाबिले के लिये शाही सेना भेजी गई। कई बार सिक्खों की जीत हुई। लेकिन कहां विशाल मुग़ल सेना और कहां मुट्ठी भर सिक्ख! अंत में पराजित होना पड़ा। गुरु जी के दुलारे चारों लड़के बड़ी निर्दयता से मारे गए। उन्होंने प्राण देना स्वीकार किया लेकिन धर्म छोड़ने पर वे राज़ी नहीं हुए।

इतना होने पर भी गुरु और सिक्ख बड़ी बहादुरी से मुसलमानी सेना से समय समय पर लड़ते रहे। औरंगज़ेब ने कपट करके गुरु जी को दरबार में बुलवाया। लोगों ने महाराज को जाने से रोका। लेकिन वह ज़बरदस्त और पवित्र आत्मा कब भयभीत होनेवाली थी। आप औरंगज़ेब से मिलने के लिये चले लेकिन अभी आप रास्ते ही में थे कि उस अन्यायी बादशाह का देहांत हो गया। उसके कमज़ोर पुत्रों के समय में बल बढ़ाने का बड़ा अच्छा मौक़ा था। लेकिन उसके एक ही वर्ष बाद गुरु साहब का भी देहांत हो गया।

गुरु ने जो काम छोड़ा, उसको उनके बहादुर चेले वंदा ने पूरा किया। सिक्ख इतिहास में इस वीर का नाम अमर रहेगा। इसने हिंदुओं में नवीन जीवन का संचार कर दिया। उसने अनेक स्थानों में मुसलमानी सेना को परास्त किया। सरहिंद से पानीपत तक सिक्खों का अधिकार था। सन् १७११ ई० में फ़र्रुख़सियर तख़्त पर बैठा। उसने ठान लिया कि जैसे हो वैसे सिक्खों का सर्वनाश किया जाय। हज़ारों सिक्खों का वध किया गया। वदले में वंदा भी लूट मार करता फिरता था। इससे बादशाह और भी चिढ़ा। उसने लाहौर के सूबेदार को वंदा के परास्त करने का हुक्म दिया। बड़ी भारी तैयारी की गई। अंत में सिक्ख पराजित हुए। वंदा गुरु पकड़कर पींजड़े में बंद किए गए।

जब गुरु के साथी एक एक करके मारे जा चुके तब बड़ी निर्दयिता से खुद वंदा की हत्या की गई। उसके शरीर का मांस तपाए हुए लोहे से जला जलाकर काटा गया। वह वीर सब बातें निर्भीकता और प्रसन्नता से सहता रहा। इस तरह धर्म के लिये अपना जीवन बितानेवाले वंदा गुरु ने धर्म के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया।

वंदा मर गया लेकिन फ़र्रुख़सियर के अत्याचार नहीं बंद हुए। जगह जगह सिक्खों की हत्या की जाती थी। हिंदू लंबे केश और दाढ़ी नहीं रखाने पाते थे। जो सिक्खों से किसी तरह का व्यवहार करता था दंडनीय समझा जाता था। जो

सिक्खों को गिरफ़्तार करा देता था उसको इनाम मिलता था और जो किसी सिक्ख का सर काटकर ला देता था उसको और अधिक इनाम मिलता था। बहुत से सिक्ख इस ज़ुल्म के शिकार हुए। उसी समय वीर और निरपराधी बालक हक़ीक़तराय धर्ममंदिर में बलिदान हुआ। यह लड़का एक मौलवी के यहां पढ़ा करता था। मुसलमान लड़कों से हिंदू देवी देवताओं की निंदा सुनकर हक़ीक़त से न रहा गया। उसने उन लोगों को मुँह तोड़ जवाब दिया। यह बात कैसे सह्य हो सकती थी! मुसलमान लड़कों की ओर मुसलमान मौलवी, मुसलमान अफ़सर और अन्यायी मुसलमान बादशाह के बेईमान क़ानून। इधर १५ वर्ष का हिंदू हक़ीक़त हिंदू धर्म का निस्सहाय और निरवलंब प्रतिनिधि। हुक्म हुआ कि अगर हक़ीक़तराय मुसलमानी धर्म न ग्रहण करे तो उसका वध किया जाय। हिंदूजाति के उस सपूत ने धर्म छोड़ना स्वीकार न किया। अधर्मियों ने इस अपराध में उसका प्राण हरण किया। हक़ीक़त मर गया लेकिन उसके मारनेवाले भी आज संसार में नहीं हैं। हिंदूजाति गर्व के साथ हक़ीक़त का नाम लेती है।

जब हम सजीव हो जायँगे तो उस बालक को अपने हृदय में रखकर पूजेंगे। रामलीला की तरह हम हक़ीक़त लीला करेंगे। जगह जगह उसकी प्रतिमाएं स्थापित होंगी।

अत्याचारों की कहानियां सुनकर हम घबरा जाते हैं

लेकिन वहादुर सिक्ख न तो घबराए और न हताश हुए। सिक्ख गुरु और धर्मप्रचारक अपना काम करके इस लोक से उठ गए थे लेकिन उनके उपदेश सिक्ख हृदयों में अंकुरित हो गए थे। आगे चलकर इन लोगों ने मिसिल नाम के छोटे छोटे गिरोह बना लिए। अभी तक सिक्खों ने जो संस्थाएं खोली थीं सब धर्म की आड़ में खुली थीं। लेकिन धर्म के नाम पर नहीं खुली थीं। इन्हीं में सुकरचकिआ नाम की मिसिल से संबंध रखनेवाले परिवार में महाराज रणजीतसिंह ने जन्म ग्रहण किया था। महाराज के जीवनवृत्तांत देने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। हम जानते हैं कि इनमें न तो राणा प्रताप का स्वजातिप्रेम था और न महाराज शिवाजी की स्वधर्मभक्ति थी। लेकिन आप बड़े वहादुर सैनिक और चतुर शासक थे। आप जिस तरह अपना राज्यप्रबंध कर रहे थे, अगर आपके बाद भी वैसा ही हुआ होता तो सिक्ख-जाति का इतना भीषण पतन न हुआ होता।

सिक्खराज्य के पतन के दो मुख्य कारण हैं, एक तो आपस की फूट और दूसरा अँगरेज़ों से लड़ना। अनेक पराजय और दुर्घटनाओं के बाद रणजीतसिंह के परिवार के अंतिम राजपुरुष, उनके आत्मज दलीपसिंह राज्यच्युत होकर विलायत भेजे गए। इसके लिये शोक है लेकिन उतना शोक नहीं है क्योंकि राज्यलक्ष्मी वलवान् के पास सदा दौड़कर चली जाती है। सब से बढ़ कर शोक इस बात का है कि दलीप-

सिंह ने ईसाई हो कर प्राण छोड़ा था । हम मानते हैं कि अगर दलीपसिंह को अपने धर्म के जानने का काफ़ी मौक़ा मिलता तो वे कभी ईसाई न होते। लेकिन किसी भी हालत में गुरु गोविंदसिंह के अनुयायी महाराज रणजीतसिंह के पुत्र का ईसाई होना हिंदू जाति के लिये उतनाही लज्जाजनक है जितना राजपूत बालाओं का मुसलमानों से विवाह होना था। जहां गुरु गोविंदसिंह के वीर पुत्रों ने प्राणदान कर धर्म की रक्षा की, उसी समाज का होकर दलीपसिंह ने इतनी आसानी से अपना धर्म त्याग कर दिया ! शोक !

चौथा अध्याय।

राजपूत असंतोष!

आप देख चुके हैं कि राजपूत लोग कितने गिर गए थे। अपनी बेटी वहन देकर जो मुसलमानों का साला और ससुर हो गया था उसके लिये अब और कौनसी दुर्गति बाक़ी थी। लेकिन ज़ुल्म और बरदाश्त दोनों की कोई हद होती है। औरंगज़ेब के अत्याचारों ने निर्जीव और पतित राजपूत आत्माओं को भी जगा दिया। चंदन शीतल होता है लेकिन रगड़ लगने से उसमें से भी आग निकल पड़ती है।

आप देख चुके हैं कि किस तरह जसवंतसिंह ने स्वजाति और सहधर्मियों का रक्त बहाकर मुग़लों का साथ दिया, कई दफ़े उसने औरंगज़ेब के लिये धोखादेही की। आप जानते थे कि शायद इन कामों से औरंगज़ेब खुश होगा, लेकिन ऐसा कब हो सकता था। जिसने अपने बाप और सगे भाइयों का विश्वास नहीं किया वह कब एक जातिद्रोही, धोखेबाज़ काफ़िर का एतबार कर सकता था! वह भीतरही भीतर जसवंत से जलता था। औरंगज़ेब की नमकहलाली करते हुए जसवंतसिंह ने सन् १६७८ ई० में प्राण त्याग किया। औरंगज़ेब वहुत दिन से जोधपुर पर नज़र लगाए बैठा

था। जसवंतसिंह के मरते ही उसने हमला कर दिया। बड़े बड़े राजपूत अफ़सर और बहादुर राठौर सिपाही जसवंतसिंह के साथ जमरूद में रह गए थे। जोधपुर परास्त हुआ। मंदिर तोड़े गए और मूर्तियां गाड़ी पर लाद कर दिल्ली लाई गईं। लेकिन जोधपुर के अभाग्य का यहीं अंत नहीं हुआ। बाहरी शत्रु से पराजित होकर भी राठौर आपस में लड़ते रहे।

जसवंतसिंह की दो रानियों के गर्भ था। फरवरी सन् १६७६ ई० में उनके दो पुत्र हुए। इनमें से एक तो थोड़े ही दिन में मरगया। लेकिन दूसरा, अजितसिंह महाराज जसवंतसिंह का वारिस हुआ। राठौर मंत्रियों ने औरंगज़ेब को समझाया और अजित को जोधपुर का राजा बनाने के लिये कहा। जून के महीने में महाराजा का परिवार दिल्ली पहुँचा। एक दफ़ा फिर बादशाह से आरज़ू की गई। बादशाह ने कहा कि अजित शाही महल में रहेगा। मुसलमान होने पर उसको जोधपुर का राज्य दिया जायगा। चीलह के घोंसले में मांस रखना इतना भयानक नहीं था जितना औरंगज़ेब के हाथ में अजित को सिपुर्द कर देना।

राठौर कब यह प्रस्ताव स्वीकार कर सकते थे! उन्होंने प्रण किया कि जैसे हो तैसे बालक अजित को दुष्ट औरंगज़ेब के हाथ से बचाना चाहिए। वे इस काम के लिये प्राण तक देने को तैयार थे। यह सब होते हुए भी वे बहुत कुछ नहीं

कर सकते अगर उनको दुर्गादास सा नेता न मिला होता। दुर्गादास की देशभक्ति अपूर्व थी। इसमें संदेह नहीं कि महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी ने हिंदूजाति के लिये अपना सर्वस्व अर्पण किया। उनके काम में स्वार्थ की गंध बिलकुल नहीं थी। फिर भी कहनेवाले कह सकते हैं कि इन महापुरुषों ने अगर किसी वक्त कष्ट उठाया तो किसी वक्त राजसिंहासन को भी शोभित किया।

लेकिन वीर सिपाही दुर्गादास के भाग्य में सोलहो आना सेवाकर्म था। हिंदूजाति को स्वतंत्र रखने के लिये भिड़ना, राठौरों का अस्तित्व रखने के लिये असह्य दुख भोगना, अजित के प्राण बचाकर उसको सिंहासन पर बैठाने के लिये लड़ना यही दुर्गादास का जीवन उद्देश्य था, यही उनका परमधर्म था, यही उनके जीवन की अभिलाषा थी! धन्य हो दुर्गादास! हिंदूजाति क्या देकर तुमसे उऋण हो! उसके पास है ही क्या!

बहादुर दुर्गादास में चरित्र बल भी अतुलनीय था। मुग़ल-बेगमों के रूप, औरंगज़ेब के धन का लोभ और उसके खड्ग का भय दुर्गादास पर अपना प्रभाव नहीं डाल सके। शत्रु औरंगज़ेब की निस्सहाय पोती के धर्म और प्राण की आपने जिस तरह रक्षा की उसको देखकर आश्चर्य होता है। इन्हीं कारणों से एक राठौर चारण ने कहा है "एह माता ऐसा पुत्र जिन, जैसा दुर्गादास"। ऐसे शेर, ऐसी ज़बरदस्त आत्मा के

रहते रहते औरंगज़ेव क्या किसी में भी इतनी शक्ति नहीं थी कि अजित को राठौरों के हाथ से छीन लेता। औरंगज़ेव ने राठौरों से अजित को मांगा। विचार करके जवाव दिया गया कि लड़का अभी छोटा है वड़ा होने पर दरवार में हाज़िर किया जायगा। औरंगज़ेव ने ज़वरदस्ती से काम लेना चाहा। हुक्म हुआ कि, अजित और रानियां गिरिफ़्तार करके नूरगढ़ के क़िले में क़ैद हों।

राठौरों ने वड़ी वहादुरी से मुक़ाविला किया। दुर्गादास महारानियों और अजित को लेकर मारवाड़ की ओर वढ़ा। मुग़ल सेना ने पीछा किया, नौ मील पर जाकर मुठभेड़ हुई। वड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। अंत में दुर्गादास ने वड़ी वहादुरी स काम पूरा किया। आवू पहाड़ पर एक साधु के साथ राजकुमार छिपा कर रखे गए। औरंगज़ेव का मनोरथ पूरा नहीं हुआ। लेकिन उस मक्कार वादशाह ने दूसरी चाल चली। उसने एक अहीर के लड़के को अपने ज़नाने में पालकर उसको अजितसिंह के नाम से मशहूर किया। उसने यह भी ज़ाहिर किया कि जिस लड़के को दुर्गादास भगा ले गए वह अजितसिंह नहीं था। इधर यह चाल चलकर औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर चढ़ाई की। रमज़ान की वजह से वह खुद अजमेर में रुक गया और अपने लड़के अकवर को उसने पल्टन के साथ भेजा। राठौरों ने मुक़ाविला किया। पुष्कर के पास युद्ध हुआ जिसमें राजपूत हारे और मारवाड़

ले लिया गया। इस लड़ाई में हारकर राठौरों ने समझ लिया कि खुली लड़ाई में मुग़लों को परास्त करना कठिन है। इस लिये वे छिप छिपकर हमले करने लगे। लेकिन इससे क्या हो सकता था। राठौर हार गए। जोधपुर और दूसरे शहर लूटे गए। मंदिर तोड़े गए, मूर्तियां फोड़ी गईं। इन अत्याचारों से क्रोधित होकर उदयपुर के राना महाराज राजसिंह ने मारवाड़ का साथ दिया। दोनों राज्यों ने मिलकर मुग़लों का मुक़ाबिला किया।

नाराज़ होकर औरंगज़ेब ने मेवाड़ पर हमला किया। चित्तौर ले लिया गया। उदयपुर के पड़ोस में १७३ मंदिर तोड़े गए। चित्तौर के ६३ मंदिर गिराए गए। इस तरह उदयपुर को परास्त करके उसको शाहज़ादा अकबर के अधिकार में छोड़कर औरंगज़ेब अजमेर वापस गया। लेकिन अकबर के पास इतनी सेना नहीं थी कि वह उदयपुर और मारवाड़ की मिली हुई ताक़त को दबा सके। अकबर के पास सिर्फ़ १२ हज़ार सिपाही थे जो कई टोलियों में बांटे गए थे। ज़रूरत पड़ने पर वह एक जगह २ हज़ार से ज़्यादा सिपाही नहीं भेज सकता था। राजपूत सेना इसके मुक़ाबिले में कहीं अधिक थी। २५ हज़ार से अधिक राठौर घुड़सवार थे। उदयपुर की पल्टन में भी १२ हज़ार से कम सिपाही नहीं थे। इसके अलावा राजपूतों को एक सुविधा और थी कि वे अपने घर में लड़ रहे थे। जिन जगहों से मुग़ल नावाक़िफ़

थे उनको राजपूत अच्छी तरह जानते थे और इस जानकारी से फ़ायदा उठाते थे।

बादशाह के चले जाने के बाद राजपूतों ने काम करने का अच्छा मौक़ा देखा। उन्होंने लूटपाट करना शुरू किया और मुग़ल सेना की रसद को रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि मुग़ल डर गए। सिपाही आगे बढ़ने से डरते थे और अफ़सर मुठभेड़ करने से घबराते थे। कुछ दिन के बाद राजपूतों ने शाहज़ादा अकबर के कैंप पर रात में हमला किया। इस तरह मेवाड़ का सत्यानाश करना तो अलग रहा मुग़लों को अपनी जान बचाना मुश्किल होगया। अकबर की हार से नाराज़ होकर बादशाह ने उसको मारवाड़ में भेज दिया और शाहज़ादा आज़म चित्तौर में तैनात किया गया।

औरंगज़ेब ने इरादा कर लिया कि मेवाड़ पर तीन तरफ़ से हमले किए जायँ। चित्तौर की ओर से शाहज़ादा आज़म, उत्तर से शाहज़ादा मुअज़्ज़म और पश्चिम से शाहज़ादा अकबर के धावे होने के हुक्म हुए। इनमें से पहले दो शाह-ज़ादे कुछ काम न कर सके। लेकिन अकबर यथासाध्य उद्योग करता रहा। चित्तौर से अपमानित होकर अकबर मारवाड़ की ओर बढ़ा। राजपूत कभी कभी छोटे मोटे धावे करते रहे लेकिन अकबर अपने इरादा से नहीं हटा। शाह-ज़ादा के साथ तहव्वरख़ां भी तैनात हुआ था। इस अफ़सर ने जी खोलकर शाहज़ादा का साथ नहीं दिया। इससे शंका

हुई कि शायद वह राजपूतों से मिल गया था। ऐसी दशा में आप स्वयं अकबर की कठिनाइयों का अनुमान करसकते हैं। एक ओर कठोर और अन्यायी बाप का डर, दूसरी ओर एक नमकहराम जेनरल का साथ, सब के ऊपर बहादुर राजपूतों का मुक़ाविला। इन्हीं बातों को सोच विचार कर और चतुर राजनीतिज्ञ दुर्गादास के समझाने में आकर अकबर अपने बाप से बाग़ी होगया। उसने अपने को दिल्ली का बादशाह मशहूर किया। दक्षिण में उसने बग़ावत का झंडा खड़ा किया। राजपूतों ने उसका साथ दिया। बहुत बड़ी आशा थी कि राजपूतों की सहायता से अकबर अपने बूढ़ बाप औरंगज़ेब को तख़्त से उतारकर उसके पापों का उचित दंड देगा। लेकिन औरंगज़ेब की मक्कारी, राजपूतों की बेवक़ूफ़ी और अकबर के अभाग्य ने ऐसा न होने दिया। औरंगज़ेब ने अकबर के नाम का एक जाली ख़त बनाया, उसके पढ़ने से मालूम होता था कि अकबर अपने पिता की राय से राजपूतों को धोखा देने के लिये उनसे मेल कर रहा है। चिट्ठी इस हिकमत से भेजी गई कि वह दुर्गादास के हाथ में पड़ गई। दुर्गादास में देशभक्ति थी, बहादुरी थी और चरित्र बल था लेकिन औरंगज़ेब की चालों के समझने की शक्ति उसमें बिल्कुल नहीं थी। डरकर राजपूत अकबर को अकेला छोड़कर भाग गए। प्रातःकाल उठकर अकबर ने अपने को निस्सहाय पाया। उसके ३५० घुड़सवारों को छोड़

कर बाक़ी सब लोग चले गए थे। हताश होकर अकबर जान लेकर भागा। उसका क्या परिणाम हुआ यह पहले दिखाया जा चुका है।

अकबर के हट जाने के बाद मेवाड़ को फ़ुर्सत मिल गई। इसी बीच में महाराना की मृत्यु हुई और जयसिंह नये महाराना हुए। बीकानेर के श्यामसिंह के समझाने पर राना ने बादशाह से सुलह कर ली। मेवाड़ को लड़ाई से छुट्टी मिली लेकिन मारवाड़ के भाग्य में अभी शांति नहीं थी। सन् १६८१ ई० से बराबर लड़ाई होती रही। सन् १७०६ ई० में विवश होकर दिल्ली के बादशाह ने अजितसिंह को मारवाड़ का महाराज स्वीकार किया।

पांचवां अध्याय।

महाराष्ट्र संगठन।

पहले के अध्यायों में सिक्ख और राजपूतों का हाल दिया जा चुका है। अब मरहठों का वर्णन किया जायगा। इसमें संदेह नहीं कि इन तीनों शक्तियों ने औरंगज़ेब को सल्तनत को धक्का दिया था। लेकिन इनमें भी मरहठे सब से अधिक प्रभावशाली थे। उनका प्रभाव औरंगज़ेब के बाद में भी अंगरेज़ी गवर्मेंट के आरंभ काल तक रहा। कहने को तो सिक्ख भी अंगरेज़ी सल्तनत के शुरू में जीते जागते थे लेकिन इतिहास के पाठक जानते हैं कि खालसा के सिद्धांतरहित, शासनरहित युद्धों और नियमबद्ध शक्तिशाली मरहठा भ्रातृ-मंडल (Confederacy) में क्या अंतर था। कारण यह है कि मरहठों का अभ्युदय किसी वृद्धि विशेष पर अवलंबित नहीं था। दिल्ली से दूर होने के कारण मुसलमान उनको उतना बलहीन भी नहीं बना सके थे। सिक्ख लोग अत्याचारों से पीड़ित होकर युद्ध करने पर लाचार हुए थे लेकिन मरहठे लोग स्वयं राज्य के लोभ से बहुत दिन से अपनी तैयारियां कर रहे थे। यह ठीक है कि औरंगज़ेब के अत्याचारों और महाराज शिवाजी के अवतार ने मरहठों को लेकर खड़ा कर दिया, लेकिन यह कहना पड़ेगा कि मरहठे

पहले से खड़ा होने के लिये तुले बैठे थे। वे उस समय भी एक जीती जागती जाति थे। वे खुद दूसरों को लूटते थे दूसरों के इलाक़े दबाते थे, न कि दूसरा कोई उनको सताता और दबाता था।

जो जाति स्वयं सजीव थी उसको संगठित करने के लिये एक चतुर नेता मिलने की देर थी। ईश्वर ने इस काम के लिये छत्रपति शिवाजी को भेजा। महाराज शिवाजी ने मरहठों के संगठन का काम ज़रूर किया लेकिन आपका उससे भी बड़ा काम यह था कि आपने हिंदुओं के शिखा सूत्र और मंदिरों की रक्षा की थी। जहां हैदरअली का काम था मैसूर दबाकर वहां का बादशाह बन जाना, निज़ामुलमुल्क का काम था मालिक को धोखा देकर हैदराबाद को दबा बैठना, सुजाउद्दौला का काम था अवध का नव्वाब बन जाना, अलीवर्दीख़ां का मतलब था बंगाल का सूबेदार होना, रणजीतसिंह का उद्देश्य था पंजाब का राजा बनना, महाराज शिवाजी का जीवन उद्देश्य स्वार्थ नहीं था। वीर महाराष्ट्र जाति को संगठित करके उसके बल से मुसलमानों के अत्याचार दूर करके हिंदुओं का गया हुआ राज्य फिर वापस लेना, महाराज का आदर्श था। इसी धर्मपूर्ण बात के साधन में आपने अपना जीवन लगाया। यही कारण है कि हिंदू जाति अब भी अपने हृदय सिंहासन पर बैठाकर महाराज को पूजती है।

शिवाजी के पिता का नाम था शाहजी । जिस रमणीरत्न ने महाराज को अपने गर्भ में धारण किया था उसका नाम था जिजाबाई। सन् १६२७ ई० में महाराज का जन्म हुआ। दैवयोग से जिजाबाई में सुमाता के सभी गुण थे । जिन गुणों के कारण शिवाजी जगत्प्रसिद्ध हुए उन सब का संस्कार माता ने अपने दूध के साथ डाल दिया था । माता के बाद दादोजी ने शिवाजी पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला था । पिता को छुट्टी न रहने के कारण दादोजी बालक की देख भाल करते थे ।

महाराज शिवाजी के पिता शाहजी अहमदनगर की सल्तनत में एक ऊंचे दरजे पर काम करते थें । अहमदनगर के नाश होने पर आपने बीजापुर की नौकरी करली । मैसूर के इलाक़े में आपको जागीर दी गई । कहा जा चुका है कि शाहजी की ग़ैरहाज़िरी में दादोजी ने महाराज की देख भाल की। १६ वर्ष की अवस्था तक आपकी मानसिक और शारीरिक शिक्षा होती रही। इस तरह तैयारी करके आपने उस कार्य्य को उठाया जिसके लिये आपको परमात्मा ने भेजा था। थोड़े ही दिनों में आपने बहुत से साथी इकट्ठे कर लिए जो आपके साथ मरने मारने को तैयार थे। अपनी वीरता और अपनी इस छोटी सी सेना के बल से आपने बीजापुर राज्य के कई क़िले दख़ल कर लिए। बीजापुर के शासक ने अभी तक इन हमलों को सिर्फ़ एक लुटेरे की लूटपाट समझा-

था। सन् १६४८ ई० में शिवाजी ने वीजापुर का खज़ाना लूट लिया और कोनकन प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। अब वीजापुर को शिवाजी का असली रूप मालूम हुआ। बदला लेने के लिये वीजापुर की ओर से शाहजी क़ैद कर लिए गए। शिवाजी ने इस संबंध में शाहंशाह शाहजहा को लिखा। शाहंशाह ने शाहजी को छुड़वा दिया और शिवाजी को ५ हज़ार सिपाहियों का सेनापति बना दिया। शाहजी कुल ४ वर्ष तक क़ैदखाने में रहे। शिवाजी ने इतने दिनों तक लूट-पाट बंद कर दी थी क्योंकि आप जानते थे कि ऐसा करने से पिता को कष्ट दिया जायगा। पिता के छूटते ही फिर आपने अपना पुराना काम शुरू किया।

वीजापुर के बादशाह ने अफ़ज़लखां की मातहती में एक सेना शिवाजी के दबाने के लिये भेजी। लेकिन अंत में अफ़-ज़लखां को खुद अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा। इससे नाराज़ होकर बीजापुर की ओर से एक दूसरी प्रबल सेना भेजी गई। बाद में बादशाह खुद तशरीफ़ लाए। कुछ दिन तक युद्ध होता रहा। लेकिन अंत में सुलह हो गई।

वीजापुर के बल का ठीक अंदाज़ा लगाकर और उससे निश्चिंत होकर शिवाजी ने दिल्ली की सल्तनत से छेड़ छाड़ करना आरंभ किया। औरंगज़ेब कब इन बातों को सह सकता था। उसने फ़ौरन् शाइस्ताखां की मातहती में एक सेना भेजी। शिवाजी सिंहगढ़ के क़िले में चले गए।

शाइस्ताख़ां पूना में शिवाजी के एक पुराने मकान में ठहरा। एक दिन रात में बारात के बहाने से २५ आदमी साथ लेकर भेष बदलकर शिवाजी उस मकान में घुस गए। शाइस्ताख़ां चारपाई पर सो रहा था। शिवाजी की तलवार से उसकी दो उँगलियां कट गईं लेकिन वह जान लेकर खिड़की के रास्ते भागा। उसका लड़का जान से मारा गया। मुग़ल सेना कुछ कट गई और कुछ घबराकर जान लेकर भाग गई। शिवाजी विजय दुंदुभी बजाते हुए सिंहगढ़ चले गए। औरंगज़ेब शाइस्ताख़ां से इतना नाराज़ हुआ कि उसने उसको बंगाल रवाना कर दिया। शाहज़ादा मुअज़्ज़िम जसवंतसिंह के साथ दक्षिण भेजा गया। ४ हज़ार आदमियों की सेना लेकर शिवाजी ने सूरत पर हमला किया और ६ रोज़ तक लूट होती रही। इसी बीच में महाराज के पिता शाहजी की मृत्यु हुई। पिता के मरने के बाद आपने स्वतंत्र राजा होने की घोषणा दी और अपनी टकसाल जारी की। इससे औरंगज़ेब और भी नाराज़ हुआ। शिवाजी को ठीक करने के लिये उसने जयसिंह की मातहती में एक सेना भेजी। जयसिंह का विश्वास न करके उसने दूसरी सेना दिलारख़ां की मातहती में भेजी। महाराज शिवाजी में एक अजीब जादू था जो औरों को वश में कर लेता था। आपका जाति-प्रेम देखकर जयसिंह मुग्ध हो गए। उधर तो आपको औरंगज़ेब के नमक का ध्यान था इधर हिंदू

होने के नाते हिंदूजाति के उद्धारकर्ता शिवाजी का ख़्याल था। इस धर्मसंकट को मिटाने के लिये आपने चाहा कि औरंगज़ेब और शिवाजी में दोस्ती हो जाय। आपके कहने पर शिवाजी अपने लड़के शंभाजी के साथ बादशाह से मिलने के लिये दिल्ली गए। औरंगज़ेब ने सोचा कि हाथ आए दुश्मन को छोड़ना ठीक नहीं। इसलिये ये लोग हिरासत में ले लिए गए। अगर महाराज में साहस और चतुरता न होती तो वे औरंगज़ेब के कारागार में पड़े सड़ते रहते। आपके जीवन की यही लास्ट नाइट होती। आप खांचों में फ़क़ीरों के लिये खाना भेजा करते थे। एक रोज़ दो खांचों में लड़के के साथ आप निकल गए। कुछ दिन के बाद फ़क़ीरी भेष में आप पूना पहुँच गए। औरंगज़ेब सर धुन और पछताकर रह गया।

दिल्ली से लौटने पर शिवाजी बराबर अपना राज्य बढ़ाते रहे। बीच में औरंगज़ेब से सुलहनामा करके शिवाजी ने बीजापुर और गोलकुंडा से मालगुज़ारी वसूल की। सुलह कर लेन पर भी न तो औरंगज़ेब ने शिवाजी को भुलाया था और न महाराज उसको भूले थे। औरंगज़ेब ने जसवंतसिंह को हुक्म दिया कि वह मित्रता करके शिवाजी को अपने हाथ में करके उसको गिरिफ़्तार करले। लेकिन शिवाजी ने उल्टी मुग़लसेना में फूट पैदा कर दी। औरंगज़ेब ने चिढ़कर खुल्लमखुल्ला युद्ध की घोषणा दी। महाराज ने रात में

सिंहगढ़ के क़िले पर धावा किया। कठिन लड़ाई और बड़ी बहादुरी के बाद आपने क़िला दख़ल कर लिया। इसके बाद और बहुत सी लड़ाइयां होती रहीं और पूर्ण आशा थी कि आप हिंदू-स्वतंत्रता की स्थापना में समर्थ होंगे लेकिन ईश्वर को कुछ और ही करना था। सन् १६८० ई० में महाराज का देहांत हो गया। एक महती आत्मा इतने शीघ्र अपने जीवन का आदर्श अधूरा छोड़कर संसार से विलीन हो गई। महाराज शिवाजी का जीवन बड़ा ही रहस्यपूर्ण है। बाहरी दृष्टि से देखने से मालूम होता है कि एक मामूली मरहठा सरदार का मनचला लड़का इधर उधर लूटपाट करता फिरता था। भाग्य के फेर से वह बढ़ते बढ़ते एक राजा हो गया। उसके उपद्रव से बड़े बड़े बादशाह घबराते थे और उसको कर चुकाते थे। लेकिन विचारचक्षु से अवलोकन करने से पता चलता है कि धर्म को लोप होते देखकर भगवान् कृष्ण के "संभवामि युगे युगे" वचन के अनुकूल किसी महात्मा ने वीर और अभिमानी मरहठा जाति में जन्म लिया। अत्याचारों की कहानियां सुनकर लड़कपन ही में जिसके रोंगटे खड़े हो जाते थे, किशोरावस्था में जिसने बड़े बड़े सैनिकों को लोहे के चने चबवा दिए, खुद दिल्ली के राजमहल में औरंगज़ेब की कुटिलता का गढ़ तोड़कर जिसने "विषस्य विषमौषधं" को चरितार्थ किया, अफ़ज़ल-ख़ां और शाइस्ताख़ां को दंड देकर जिसने शठं प्रति शाठ्यं

का उदाहरण दिखलाया, प्रजा को जिसने पिता की तरह पाला, परस्त्री की ओर जिसने स्वप्न में भी कुदृष्टि नहीं डाली, उस महात्मा को उस वीरपुंगव को अगर हिंदूजाति अपने हृदय सिंहासन पर बैठाकर पूजती है तो क्या बुराई करती है? कुछ दिन बीतने पर जब संसार में सद्शिक्षा के साथ साथ निष्पक्ष भाव का विशेष संचार होगा लोग छत्रपति शिवाजी महाराज के गुणों को अधिक अधिक समझेंगे और जानेंगे कि जिसको वे अबतक एक लुटेरे की डकैती समझते थे वह वास्तव में अधर्म पर धर्म की विजय थी। कुछ लोग समझते हैं कि जिस तरह औरंगज़ेब ने हिंदू धर्म पर अत्याचार किया वैसे ही शिवाजी ने मुसलमानों के साथ बर्ताव किए थे। लेकिन यह ख्याल बिल्कुल ग़लत है। कई मुसलमान लेखकों ने शिवाजी के सदाचार और सज्जनता की प्रशंसा की है। असल बात तो यह है कि जिस समय महाराज ने जन्म ग्रहण किया था औरंगज़ेब हिंदुओं पर घोर अत्याचार कर रहा था। महाराज ने उससे हिंदुओं को बचाया। खुद अत्याचार करना तो अलग रहा अगर कोई हिंदू राजा मुसलमानों पर अत्याचार करता तो महाराज उसका मुँह तोड़ने को वैसे ही अग्रसर होते जैसे आप औरंगज़ेब के सम्मुख खड़े हुए थे। आप गुरु रामदास के शिष्य थे जिनके धार्मिक विचार बड़े ही उदार थे। शिवाजी की धार्मिक उदारता का ठीक पता उस पत्र से

लगता है जिसको आपने जज़िया के संबंध में औरंगज़ेब को लिखा था।

शिवाजी के लड़के शंभाजी में वीरता तो ज़रूर थी लेकिन पिता के और गुण नाममात्र को भी नहीं थे। इनको शराब पीने की आदत पड़ गई थी। जब संगमेश्वर के बाग़ में आप नशे में चूर थे औरंगज़ेब के गोइंदों ने गिरिफ़्तार कर लिया। औरंगज़ेब ने शंभाजी से मुसलमान होने के लिये कहा। शंभा के शरीर में शिवाजी का रक्त था। उसने कड़ककर मुँहतोड़ जवाब दिया। औरंगज़ेब ने गरम लोहे से उसकी आंखें निकलाकर उसकी ज़बान कटवाकर फ़ौरन् मरवा डाला। शंभाजी का लड़का साहू भी गिरिफ़्तार हो गया। वह शाही महल में ग़ुलाम की तरह पाला गया। इस तरह शिवाजी का वंश निर्मूल हो गया। लेकिन महाराज की आत्मा अब भी काम करती थी। महाराज के काम को पेशवाओं ने उठाया। सींधिया, हुलकर इत्यादि दूसरे मरहठों ने भी सहायता की।

मरहठा राज्यों का एक भ्रातृमंडल सा बनगया था जिसको मरहठा कनफ़िडरेसी कहकर पुकारते हैं। इसके संगठन को देखकर विदेशी राजनीतिज्ञ अब भी दांतों अँगुली चबाते हैं। लेकिन घर की फूट से जब सोने की लंका जल गई तब इस भ्रातृमंडल को नाश होते कितने दिन लगते। महाराष्ट्र जाति में रघोबा नाम का विभीषण पैदा हुआ था जिसने

सब बना बनाया खेल चौपट कर दिया। अंतिम पेशवा के दत्तकपुत्र नाना साहेब ने सन् १८५७ ई० के बलवे में अपने को चाहे किसी भी कारण से हो पाप के गढ़े में गिरा दिया। तब से उसने मुँह भी नहीं दिखलाया और मालूम नहीं कहां चला गया। अब भी मरहठा रियासतें वर्तमान हैं जो अँगरेज़ी गवर्मेंट की मैत्री से लाभ उठाती हुई फूलती फलती हैं। उनमें से कितनी ही कितनी बातों में और नरपतियों के लिये आदर्श हो रही हैं। महाराज सयाजी राव बरौदानरेश ने अपने राज्य में जो सुधार प्रचलित किए हैं उनकी मुक्तकंठ से सब लोग प्रशंसा करते हैं। महाराज ग्वालियर की वीरता उदारता और प्रजावत्सलता सब पर प्रगट है। ईश्वर करे दिन दिन इनकी उन्नति हो, दिन दिन इनके सुशासन से इनकी प्रजाओं का कल्याण हो, ब्रिटिश गवर्मेंट और इनकी मित्रता चिरस्थायिनी हो। दोनों एक दूसरे को लाभ पहुँचावें यही बीस करोड़ भारतीय हिंदू प्रजा की मनोकामना है।

छठाँ अध्याय।

औरंगज़ेब के अंतिम दिन।

शिवाजी के मरने से औरंगज़ेब को एक बड़े भारी दुश्मन से छुट्टी मिली। फ़ुर्सत पाकर उसने गोलकुंडा और बीजापुर की रियासतों पर ख़्याल दौड़ाया। पहले गोलकुंडे पर चढ़ाई हुई। वहां का बादशाह डरके मारे क़िले में जा छिपा। हैदराबाद में तीन दिन तक बराबर लूट होती रही। विवश होकर गोलकुंडा नरेश ने बहुत सा धन देकर औरंगज़ेब से सुलह की। गोलकुंडा से छुट्टी पाकर औरंगज़ेब ने बीजापुर पर चढ़ाई की। शहर घेर लिया गया। दीवारें तोड़ दी गईं। शहर हाथ में आया और वहां का नाबालिग़ बादशाह गिरिफ़्तार हुआ। इस तरह सन् १६८६ ई० में बीजापुर जीतकर दिल्ली की सल्तनत में मिला लिया गया।

बीजापुर का वारा न्यारा करके औरंगज़ेब ने निष्कारण सुलहनामे की परवा न करके गोलकुंडा पर चढ़ाई कर दी। सात महीने तक लड़ाई होती रही। अंत में औरंगज़ेब की जीत हुई। सन् १६८७ ई० में गोलकुंडा भी दिल्ली के राज्य में मिला लिया गया। औरंगज़ेब ने बीजापुर और गोलकुंडा को जीतकर अपने जान बड़ा भारी काम किया। काम तो ज़रूर भारी था लेकिन उसका परिणाम बुरा था।

गोलकुंडा और बीजापुर के स्वतंत्र रहने से मरहठों के हमलों से बहुत कुछ आड़ थी। ये रियासतें समय समय पर मरहठों का आगा रोकती थीं, उनसे मुठभेड़ करके उनको बलथक भी करती थीं। इनके नाश होने से अब मरहठों को दिल्ली की सल्तनत पर हमले करने की काफ़ी फ़ुर्सत मिलन लगी। दूसरी बुराई की बात यह हुई कि इन रियासतों के बहुत से सिपाही मरहठों से मिल गए।

औरंगज़ेब ने अपने बल और साहस के सामने इन कठिनाइयों की परवाह नहीं की। किसी दरजे तक वह अपने इरादे में कामयाब भी रहा। शंभाजी का गिरिफ़्तार और क़त्ल होना औरंगज़ेब के लिये कम खुशी की बात नहीं थी। लेकिन मरहठा जाति उस दरजे को पहुँच गई थी जब एक आदमी के मरने या क़ैद होने पर काम नहीं रुक सकता है। मरहठों के सामने शिवाजी के जीवन का आदर्श मौजूद था। उसी पर नज़र रखते हुए वे रात दिन परिश्रम कर रहे थे। शंभाजी के गिरिफ़्तार होने से औरंगज़ेब का हौसिला और भी बढ़ गया। एक तरह दक्षिण का बहुत सा हिस्सा उसने जीत ही लिया था। लेकिन अब वह महज़ जीत से संतुष्ट नहीं था। वह चाहता था कि उसके दक्षिण के सूबे उतने ही निर्विघ्न हो जायँ जितने कि उत्तरीय हिंदुस्तान में हैं। यह काम उस वक़्त तक नहीं हो सकता था जब तक कि मरहठों का बल बिल्कुल न तोड़ दिया जाय।

यही कार्य सिद्ध करने के लिये औरंगज़ेब ने १७ वर्ष तक लगातार कोशिश की लेकिन ना-कामयाब रहा। इस असफलता का कारण क्या था। औरंगज़ेब बूढ़ा ज़रूर हो गया था लेकिन मरते वक्त तक उसमें साहस था। आखीर दम तक उसने अपने कामों को इतनी मुस्तैदी से किया जैसा उसकी उम्र के कम आदमी कर सकते हैं। यह तो हुई उसके मानसिक बल की बात। उसमें शारीरिक बल भी अभी बहुत कुछ था। डाक्टर जिमेली करेरी ने औरंगज़ेब को देखकर उस वक्त की हालत बयान की है।

डाक्टर का कहना है कि औरंगज़ेब खुद अर्ज़ियां लेकर बिला चश्मे के खड़े खड़े उनको पढ़ता और उन पर हुक्म देता था। उसके चेहरे से खुशी झलकती थी।

इससे पता चलता है कि औरंगज़ेब की तंदुरुस्ती ख़राब नहीं हुई थी। फिर वजह क्या थी कि वह अपने मक़सद में कामयाब नहीं हुआ? उस समय के इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि मुग़ल सेना में बे-तरह ऐयाशी और कमज़ोरी आ गई थी। वह आरामतलब फ़ौज बहादुर मरहठों का मुक़ाबला नहीं कर सकती थी। मरहठे सिपाही हर तरह की तकलीफ़ उठाने के आदी थे। वन पहाड़ और कंदरा उनके घर थे। ज़मीन उनका बिछौना और हाथ तकिए थे। वे सूखी रोटी खाकर संतुष्ट रहते थे। पचास साठ मील तक दक्षिणी घोड़ों पर बैठकर वे हवा खाने जाया करते थे। उनमें आराम-

तलबी का नाम नहीं था। सदाचारी इतने कि परस्त्री को माता की तरह देखते थे।

इधर इनकी यह दशा उधर मुग़ल सेना के कुछ और ही रंग ढंग थे। राजा शिवप्रसाद ने अपने इतिहास तिमिरनाशक में बड़ी ही मज़ेदार भाषा में इनका वर्णन किया है जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

" निदान अब ज़रा औरंगज़ेब की फ़ौज पर निगाह करनी चाहिए। ज़रा इसके सर्दारों के घोड़ों को देखना चाहिए। दुम और याल बिल्कुल रँगी हुई। सोने चांदी के साज़ सिर से पैर तक लदे हुए। कलग़ियां बहुत लंबी लंबी, पैरों में झांझनें बजती हुई। मोटे इतने कि जितने लंबे उसी के क़रीब क़रीब चौड़े। और फिर चारजामे उन पर मख़मली जर्दोज़ी बड़े भारी पड़े हुए और उनमें सुरागाय की दुम के चवर दोनों तरफ़ लटकते हुए। सवार घोड़ों से भी ज़ियादा देखने के लायक़ हैं। कोई अपने से ज़ियादा भारी दगला और ज़िरह बख़तर पहने हुए। कोई घेरदार जामा और शाल दुशाला लपेटे हुए। लेकिन चेहरे ज़र्द, रात के जागे, नशे में चूर या दवा खाते पीते। दस क़दम घोड़ा चला घोड़े को पसीना आया, सवार बे-होश हो गया। अगर दूर चलना पड़ा तो दोनों बे-दम होकर गिर पड़े। जैसे सर्दार वैसे ही उनके पियादे और सवार। लश्कर में जहां दस सिपाही तो सौ बनिए दूकानदार, भांड़, भगतिये, रंडी, छोकरे, नौकर,

ख़िद्मतगार, ख़ानसामा, रसद काहे को मिल सकती। डेरे डंडे ऐश इशरत के साज सामान इतने कि कभी अच्छी तरह बारबर्दारी की तद्बीर न हो सकती। तलवार पीछे रह जाय मुज़ायक़ा नहीं पर तंबूरा साथ रहना चाहिए। दुश्मन वार किए जाय परवा नहीं पर चिलम न जलने पावे। उस वक्त का एक फ़रासीसी इस फ़ौज की ख़ूब तारीफ़ लिखता है। वह लिखता है कि तनख़्वाहें बहुत बड़ी बड़ी और चाकरी कुछ भी नहीं, न कोई पहरा चौकी देता है, न कोई दुश्मन से मुक़ाबला करता है और बड़ी से बड़ी सज़ा हुई तो एक दिन की तनख़्वाह कट गई।"

ऐसी दशा में मरहठों और मुग़लों का क्या मुक़ाबला हो सकता था। इधर यह परेशानी उधर बूढ़ी उम्र में अपने पापों का ध्यान। औरंगज़ेब के दिल में उस वर्ताव का ध्यान आया जो उसने अपने बाप शाहंशाह शाहजहां के साथ किया था। उसने समझा कि दुनिया में जैसे को तैसा मिलता है। उसने सोचा कि कहीं उसके लड़के भी उसके साथ वही वर्ताव न करें। औरंगज़ेब ने अपनी ताक़त से लोगों को दबाया था। इसलिये वह समझता था कि ताक़त कम होते ही लोग उसको दबा बैठेंगे। सब ताक़त का खेल था, प्रेम और सहानुभूति से उसको कुछ मतलब नहीं। दुनिया में शायद ही कोई व्यक्ति रहा हो जिसको उसने प्यार किया हो। दुनिया भी समझ गई थी कि जो अपने

बाप का न हुआ वह औरों का कैसे होगा। आदमी अपने बच्चों के लिये कितनी तकलीफ़ें उठाता है क्या क्या पाप नहीं करता है । औरंगज़ेब ने भी सोचा होगा कि उसके पाप की कमाई उसके लड़के भोगेंगे। यह सोच-कर उसको खुशी भी होती रही होगी। लेकिन बुढ़ापा आने पर वह सब सुख मालूम नहीं क्या हो गया।

अपने कर्मों का स्मरण करके वह रात दिन चिंता में रहता था। वह किसी का विश्वास नहीं करता था। दिल्ली का वैभव छोड़कर दूर देश दक्षिण में शाहंशाह तनहाई की ज़िंदगी बिता रहा था। चिंता उसको चूर करती जा रही थी। मालूम होता था कि सामने बंदी पिता शाहजहां हाथ जोड़कर खड़ा है और करुणा की दृष्टि से देख देखकर कह रहा है " बेटा तुमने क्या किया ? मैंने तेरा क्या क़सूर किया था ? " सोते वक़्त मालूम होता था कि एक तरफ़ से मुअज़्ज़म, दूसरी तरफ़ से आज़म और तीसरी तरफ़ से कामबख़्श उसको गिरिफ़्तार करने के लिये बढ़े चले आते हैं। जो हो औरंगज़ेब जीते जीते ऐसा न होने देगा। दुनिया में कोई उसका बेटी बेटा नहीं है। सब उसके दुश्मन हैं। वह किसी को अपने पास नहीं आने देगा, तब लोग कैसे उसको गिरिफ़्तार करेंगे। यही सोच समझकर औरंगज़ेब अकेला रहता था। अकबर पहले ही लड़ झगड़कर इस दुनिया से बिदा हो गया था । औरंगज़ेब ने एक दफ़ा मुअज़्ज़म को

लिखा था "बादशाहत इतनी मुश्किल चीज़ है कि बादशाह अपनी छाया का भी विश्वास नहीं कर सकता है। सँभलकर चलो नहीं तो तुम्हारी भी वही हालत होगी जो तुम्हारे भाई की हुई है।" मुअज़्ज़म फ़र्माबरदारी दिखाता रहा लेकिन फिर भी उसको कारागार हुआ। सन् १६८७ ई० से ७ वर्ष तक उसको जेल काटना पड़ा। उसके बाद आज़म पर ख़फ़गी हुई। सब से छोटे शाहज़ादा कामबख़्श से बादशाह खुश था लेकिन वह भी मरहठों से मिल जाने की वजह से क़ैद किया गया था। इस तरह एक भी लड़का ऐसा नहीं बचा जिस पर औरंगज़ेब का शुबहा न रहा हो।

औरंगज़ेब के सामने चारों तरफ़ दुख ही दुख था। राजपूत, जाट और सिक्खों ने उत्तरी भारत में उपद्रव मचाया। मरहठों ने दक्षिण में अशांति का बीज बोया और बोकर वे उसको रात दिन सींच रहे थे। प्रतापी मुग़ल सेना सर्वथा निर्बल और निर्जीव सी हो गई थी। निराश और व्याकुल होकर औरंगज़ेब उसी अहमदनगर को वापस आया जहां से बीस वर्ष पहले उसने हौसले के साथ यात्रा की थी। निराशा के जीवन से मर जाना अच्छा है। औरंगज़ेब इसको अच्छी तरह जानता था। अहमदनगर में पैर रखते वक़्त उसने कह दिया कि यह उसकी अंतिम यात्रा है। यह जानते हुए भी वह शक की वजह से अपने लड़कों को नज़दीक नहीं आने देता था। अंत काल में उसके हृदय की क्या दशा

थीं इसका ठीक पता उसकी चिट्ठियों से लगता है जो उसने अपने लड़कों को लिखी थीं । उसने शाहज़ादा आज़म को लिखा था।

"मैं बहुत बुड्ढा और कमज़ोर हो गया हूं । मेरा बदन जवाब देता जा रहा है। जब मैं पैदा हुआ था तो मेरे चारों तरफ़ बहुत से आदमी थे लेकिन अब मैं अकेला जा रहा हूं। मैं नहीं जानता कि क्यों और किस काम के लिये मैं इस दुनिया में आया । मुझे उन घड़ियों के लिये जिनको मैंने खुदा की इबादत में नहीं ख़र्च किया बड़ा अफ़सोस है। मैंने इस मुल्क और उसके बाशिंदों की कोई भलाई नहीं की। मेरी ज़िंदगी के साल बे-मतलब बरबाद हुए । खुदा मेरे दिल में था लेकिन मेरी अंधी आंखों ने उसको नहीं देखा । ज़िंदगी बीतती जाती है और गुज़रा हुआ वक़्त फिर नहीं वापस आने का है। मेरे लिये आइंदा कोई उम्मीद नहीं है। मेरा जोश जाता रहा । अब सिर्फ़ चमड़ा और सूखा गोश्त रह गया है । मेरे ही तरह मेरी फ़ौज भी बे-दिल हो गई है। खुदा से दूर हो गया हूं। दिल में तसल्ली नहीं है। सिपाहियों को नहीं मालूम कि कोई उनका बादशाह है या नहीं । मैं दुनिया में अकेला आया, साथ कुछ भी नहीं लाया । लेकिन आज पाप की गठरी सर पर लादकर ले जा रहा हूं । नहीं मालूम मुझको क्या सज़ा भोगनी पड़ेगी। गो कि मुझे खुदा के रहम में एतक़ाद है लेकिन अपने गुनाहों का मुझे सख़्त

रंज है। जब मुझे खुद अपने में एतबार नहीं रहा तो फिर औरों में कैसे हो सकता है। चाहे जो हो मैंने अपनी किश्ती दरिया में डाल दी।" उसने अपने प्यारे लड़के कामबख़्श को लिखा था "मेरे प्राणों के प्राण! अब मैं अकेला जा रहा हूं। तुम्हें लावारिस छोड़ जाने का मुझे बड़ा अफ़सोस है। लेकिन इससे क्या मतलब? जो कुछ तकलीफ़ें मैंने औरों को दीं, जो कुछ गुनाह मैंने किए, जो कुछ ग़लतियां मुझसे हुईं उन सब का नतीजा मैं अपने साथ ले जा रहा हूं। तअज्जुब है कि मैं इस दुनिया में अकेला आया लेकिन अब गुनाहों का बोझ लेकर जा रहा हूं × × मैं जहां कहीं देखता हूं खुदा ही खुदा दिखाई पड़ता है। × × × × मैंने बहुत बड़े बड़े गुनाह किए हैं। मालूम नहीं उनका क्या नतीजा मुझे भोगना पड़ेगा। × × × मुझे बड़ी चिंता है × × × ×"

इन मानसिक वेदनाओं को सहते हुए, इस चिंता की अग्नि में जलते हुए, अपने पापों से इस तरह डरते हुए, प्रायश्चित्त का ध्यान करके घबराते हुए, तारीख़ ४ मार्च सन् १७०७ ई० में जुमे के रोज़ ५० वर्ष राज्य करके ८६ वर्ष की अवस्था में सुबह की नमाज़ पढ़ने के बाद शाहंशाह औरंगज़ेब ने अपना शरीर छोड़ा। मरते वक्त उसने हुक्म दिया था "इस ख़ाक के पुतले को नज़दीक के क़ब्रगाह में बिला कफ़न के ज़मीन में दफ़न कर देना"। उसका जनाज़ा बड़ी सादगी से निकला और उसकी लाश दौलताबाद में

मुसलमान फ़क़ीरों की क़ब्रों के पास दफ़न की गई ।

जिस चकाचौंध कर देनेवाली प्रचंड ज्वाला का वृत्तांत आप सुन रहे थे वह बुझ गई । यही उसके और दूसरे जीवनों का अंत है । जिसने जीवन के इस अंतिम लक्ष्य को अपने सामने रखा वह ठीक मार्ग पर चलता रहा । जिसने मृत्यु का ध्यान भुलाकर अपने ही को इस संसार और इसकी संपत्ति का कर्ता धर्ता और भोगनेवाला मालिक समझ लिया उसको ठोकर खानी पड़ती है, पछताना पड़ता है, अपने अमूल्य जीवन को निरर्थक खोकर रोना पड़ता है । औरंगज़ेब के जीवन में यही बड़ी भारी ग़लती हुई । सदा दीन का दम भरते हुए भी उसने दीन और इसलाम की असलियत को कभी नहीं समझा । जैसा कि खुद उसने अपनी चिट्ठी में लिखा है, खुदा को दिल के अंदर पाकर भी उसने उसको नहीं देखा । स्वार्थ के परदे ने उसको अंधा कर दिया था । उसने सोच रखा था कि दिल्ली के तख़्त ताऊस पर बैठ जाना ही मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य है । उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने क्या क्या नहीं किया । लेकिन अंत में उसको सूझ पड़ा कि धर्मात्मा होकर दरिद्र रहना अच्छा है लेकिन अधर्मी होकर राजराजेश्वर होना भी श्रेयस्कर नहीं ।

सातवां अध्याय ।

बहादुरशाह ।

१७०७–१७१२ ई०

आपने देखा है कि किस तरह अनेक विरोधिनी शक्तियों ने औरंगज़ेब के अंतिम दिनों को दुखपूर्ण बनाकर उसके राज्य को भीतर ही भीतर चाल डाला था । सब कुछ होते हुए भी उस बूढ़े शेर ने मरते दम तक अपना रोब बहुत कुछ क़ायम रखा । उसके मरते ही मुगल राज्य की दीवारें धड़ाधड़ गिरने लगीं । उनका गिरना सब तरह निश्चय था क्योंकि औरंगज़ेब के लड़कों में एक भी न तो शाहंशाह अकबर के समान राजनीतिज्ञ था और न औरंगज़ेब के समान हौसिलेवाला और ज़बरदस्त था । ऐसे लोग सिक्ख धर्म की प्रज्वलित अग्नि के बुझाने में कैसे समर्थ हो सकते थे, राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति को कैसे रोक सकते थे, महाराष्ट्र राष्ट्रीयता के आघातों को कैसे आड़ सकते थे । एक तो कमज़ोरी, तिस पर भी आपस में मेल नहीं । औरंगज़ेब के मरते देर नहीं हुई कि लड़के आपस में लड़ने लगे । औरंगज़ेब ने अपनी ज़िंदगी में बटवारा कर दिया था । लेकिन उस आज्ञा को कौन मानने लगा था । एक तो वैसे ही राजलोभ बड़ा प्रबल होता है फिर औरंगज़ेब ने अपने

भाइयों से लड़कर पहले ही से अपने पुत्रों के लिये रास्ता दिखा दिया था। पुत्रों ने औरंगज़ेब की बातों पर ध्यान न देकर उसके कामों का अनुकरण किया। आपको मालूम है कि औरंगज़ेब ने मरते वक्त तीन लड़के छोड़े थे जिनके नाम थे मुअज्ज़म, आज़म और कामबख़्श। बाप के मरते ही दूसरे लड़के आज़म ने अपने को हिंदुस्तान का बादशाह मशहूर किया। शाहज़ादा मुअज्ज़म काबुल पर क़ब्ज़ा करके वहां का बादशाह हो गया। लेकिन उसने हिंदुस्तान के तख़्त का हौसला दिल से नहीं निकाला। निकालता कैसे क्योंकि बड़ा बेटा होने की वजह से तख़्त का हक़दार भी तो वही था। जो हो अब मामला सीधे तै होनेवाला नहीं था क्योंकि आज़म भी दिल्ली की सल्तनत के लिये मरने मारने के लिये तुला बैठा था। दोनों तरफ़ से तैयारियां होने लगीं। मुग़ल वृक्ष की सूखी हुई टहनियों को जलाकर ख़ाक करने के लिये दोनों ओर से सैनिक नामधारी असंख्य जवान इकट्ठे हो गए। आगरे के क़रीब मुठभेड हो गई। घोर घमसान हुई। दोनों ओर के बहुत से लोग कट गए। अंत में बड़े भाई की जीत हुई। आज़म हारा और मारा गया। उसके दो लड़के लड़ाई में काम आए और तीसरा जो सब से छोटा था क़ैद किया गया। आज़म के जीतने की अधिक संभावना थी लेकिन अपने घमंड के कारण उसका पराजय हुआ। अपने ग़रूर की वजह से उसने अपने बहुत से अफ़-

सरों को नाराज़ कर दिया था। असदख़ां और उसके लड़के ज़ुलफ़िक़ारख़ां ने पहले ही से आज़म का साथ छोड़ दिया था। लड़ाइ का नतीजा मालूम हो जाने पर ये लोग फ़तहयाब मुअज़्ज़म की तरफ़ हो गए। उसने इन लोगों की बड़ी ख़ातिर की और बड़े ऊँचे दरजों पर इनको मुक़र्रर किया। दुनिया खाने की साथी है। आज़म के दूसरे साथी भी धीरे धीरे मुअज़्ज़म की तरफ़ आ गए। उसने सब लोगों को अच्छी अच्छी नौकरियां दीं। ख़ातिर सबकी की गई। लेकिन सबसे ज्यादा एतबार किया जाता था मुनीमख़ां का, जो काबुल में मुअज़्ज़म का सबसे बड़ा अफ़सर था। मुनीमख़ां वज़ीर मुक़र्रर किया गया। वह इस पद के योग्य भी था। क़ाबलियत के साथ साथ वह बादशाह का बड़ा भारी ख़ैरख़्वाह था।

मुअज़्ज़म बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा। प्रजा औरंगज़ेब के अत्यांचारों से घबराई हुई थी। उसने नए शासक का हृदय से स्वागत किया।

आज़म का काम तमाम करके बहादुरशाह कामबख़्श की ओर मुड़ा। घमंडी होते हुए भी कामबख़्श ने आज़म की मातहती क़बूल कर ली थी। जब आज़म को मारकर बहादुरशाह बादशाह हुआ, कामबख़्श ने उसकी एतायत मंजूर नहीं की। बादशाह ने बहुत कुछ ऊँचा नीचा दिखलाया, बहुत कुछ लालच भी दिलाया लेकिन ज़िद्दी कामबख़्श ने एक नहीं माना।

अंत में विवश होकर युद्ध करना पड़ा। हैदराबाद के पास बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। कामबख़्श मारा गया। बहादुरशाह अब एक तरह निर्विघ्न राज्य करने लगा। एक तरह इस वजह से कि अभी राजपूत, मरहठे और सिक्ख बदस्तूर अपना ज़ोर जमाए बैठे थे। शाहज़ादा आज़म ने तख़्त पर बैठते ही साहूजी को क़ैद से रिहा कर दिया था। साहू की ग़ैरहाज़िरी में उसके चचा राजाराम को राज्य दिया गया था। राजाराम के मरने पर उसकी विधवा स्त्री ताराबाई राज का काम करती थी। राज करने के लिये ज़रूर राजाराम तैनात कर दिया गया था लेकिन लोग इसको भूले नहीं थे कि राज्य का असली हक़दार साहू है। इन्हीं विचारों से फ़ायदा उठाने के लिये आज़म ने साहू को छोड़कर उससे सुलह कर ली थी। लेकिन दुनिया में हर शख़्स के दोस्त और दुश्मन होते हैं। जहां बहुत से लोगों ने साहू का साथ दिया, कुछ लोगों ने उसका विरोध भी किया। आपस की इस फूट से मुग़लों का बड़ा फ़ायदा हुआ। कहां तो मौक़ा था कि मरहठे ज़ोर लगाकर मुग़ल सल्तनत को उलट दें, कहां घर की लड़ाई शुरू हुई। मरहठों की प्रबल शक्ति के सामने जब प्रतापी औरंगज़ेब को लोहे के चने चबाने पड़े तो बेचारा बहादुरशाह क्या उनका मुक़ाबिला कर सकता था! लेकिन दुर्मति ने अपना काम किया और अपनी बेवक़ूफ़ी से मरहठों ने हिंदू साम्राज्य स्थापित करने का

एक बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ से खो दिया। यह उनकी बड़ी भारी भूल थी। कामबख़्श के मरने के बाद बहादुरशाह ने चाहा कि मरहठों स सुलह हो जाय। ज़ुलफ़िक़ारख़ां चाहता था कि सुलह साहूजी स हो लेकिन मुनीमख़ां की राय थी कि उन्हीं शर्तों पर ताराबाई से सुलह हो। ज़ुलफ़िक़ारख़ां दक्खिन का सूबेदार बनाया गया। चूंकि ज़ुलफ़िक़ारख़ां को दरबार से छुट्टी नहीं मिल सकती थी उसकी जगह पर दाऊदख़ां तैनात किया गया। दाऊद ने ज़ुलफ़िक़ारख़ां की बात मानकर साहूजी से सुलह कर ली। तै हुआ कि मरहठों को चौथ दी जायगी लेकिन मुग़लों के अफ़सर उसको इकट्ठा करके उन्हें दे देंगे। मरहठों को चौथ इकट्ठा करने स कुछ मतलब नहीं रहेगा। वैसे देखने से तो मालूम होता है कि इसमें मरहठों का फ़ायदा हुआ क्योंकि बिना मिहनत घर बैठे उनको चौथ मिल जायगी। लेकिन चतुर मुग़ल सूबेदार का मतलब था कि घर बैठे चौथ लेने में मरहठों का प्रभाव घट जायगा। सर्व साधारण से उनको बहुत कम मतलब रहेगा, इसलिये लोग उनका उतना डर नहीं मानेंगे। इस इंतिज़ाम से मरहठों की लूट बहुत कुछ बंद हो गई। बहादुरशाह के वक़्त में दक्खिन में बहुत कुछ शांति रही। इस कारण से बहादुरशाह को दक्खिन से फ़ुर्सत मिल गई। अब उसने अपना समय और शक्ति दूसरं आवश्यक कामों में लगाई। बहादुरशाह का ध्यान अब राजपुताना की ओर

गया। उसने समझा कि मुग़ल राज्य की गिरी पड़ी अवस्था में राजपूतों से लड़ना ठीक न होगा। इस विचार से उसने राजपूतों से संधि करना चाहा। इससे बहादुरशाह की राजनीति-पटुता का पता लगता है। उसने एक होशियारी और भी की। राजपूत रियासतों की ताक़त का अंदाज़ा लगाकर उसने सुलहनामे की शर्तों को मुलायम और कड़ा बनाया। वह जानता था कि उदयपुर राजपूतों का शिरोमणि और हिंदूजाति का सर्वप्रधान स्तंभ है। इसलिये उदयपुर के लिये उसने बड़ी नरम शर्तें पेश कीं। सुलहनामे के मुताबिक़ उदयपुर सब तरह स्वतंत्र हो गया, उसको बरायनाम मुग़लों का आधिपत्य मानना पड़ा। जोधपुर की शर्त उससे कुछ कड़ी थी। जोधपुर को मुग़लों की मदद के लिये आवश्यक सेना रखनी पड़ी। जैपुर के सुलहनामे में और भी अधिक कड़ाई थी। बहादुरशाह ने जिस चालाकी से काम किया था वह सिद्ध नहीं हुई। जोधपुर और जैपुर के राजाओं ने मिलकर मुग़लों से लड़ने का विचार किया। लड़ाई ठन गई होती लेकिन तबतक ख़बर आई कि सिक्खों ने सरहिंद दख़ल कर लिया। बहादुरशाह अब क्या करता? हार मानकर उसने जोधपुर और जैपुर से उनकी मुँहमांगी शर्तों पर सुलह की। नए सुलहनामे क़रीब क़रीब उन्हीं नियमों पर हुए जो उदयपुर के साथ ते हुए थे।

अब मरहठों और राजपूतों से छुट्टी पाकर बहादुरशाह

सिक्खों का मुक़ाविला करने के लिये बढ़ा। सिक्ख धर्म, उसके संस्थापक और गुरुओं का हाल पहले लिखा जा चुका है। सिक्ख धर्म का मुख्य उद्देश्य था हिंदू मुसलमानों के वैर-भाव को मिटाकर उनको एक करना। सिक्ख धर्म का कहना था कि हिंदू और मुसलमान दोनों एक ही परम पिता की संतान हैं, दोनों परमात्मा के प्यारे हैं, दोनों वरावर हैं। लेकिन एक गिरी हुई जाति का अपने विजेता के सामने वरावरी का दावा करना धर्म की दृष्टि से चाहे जैसा हो, साधारण वुद्धि से देखने पर धृष्टता मात्र मालूम होती है। जव संसार में आपकी कोई गिनती नहीं, दुनिया आपको अपने पैर की धूलि मानने को तैयार नहीं है, उस वक्त ख़ाम-ख़्वाह ईश्वर का नाम लेकर, अपने पूर्वजों की वड़ाई का दम भरकर पंच वरावर होना वे-शरमी है। जो चाहता है कि दूसरे लोग उसको भाई मानें, उसको वरावर का दरजा दें, उसको चाहिए कि दूसरे लोगों की तरह आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक उन्नति करे। विना इसके स्थायी मित्रता, स्थायी वंधुत्व होही नहीं सकता है। अगर भलमनसाहत का ख़्याल करके, हमारे सूखे और उदास चेहरों पर दया करके, किसी ने मित्रता का हाथ वढ़ा भी दिया तव भी इतने से क्या हो सकता है। पहले योग्यता उत्पादन करो फिर इच्छा प्रगट करो। परतंत्र हिंदुओं के गुरु साधु नानक ने जो ऐक्य का विगुल फूँका वह स्वार्थ समझा

गया, ढोंग माना गया, राजविद्रोह क़रार दिया गया। अत्या-चार पर अत्याचार होने लगे। विवश होकर सिक्खों को वीर बनना पड़ा। मुसलमानों की तरह शक्तिशाली बनना पड़ा तब कुछ काम चला।

बहादुरशाह के वक़्त में बंदा गुरु की मातहती में सिक्खों ने बहुत से इलाक़े दखल कर लिए। उन्होंने सरहिंद के सूबेदार को शिकस्त देकर वहां अपना अधिकार जमाया। उसके आगे सतलज और यमुना पार करते हुए वे लोग सहारनपुर तक पहुँच गए। वहां के अफ़सरों ने कुछ मुक़ा-बिला किया और सिक्ख लोगों ने भागकर लुधियाना और वहां की पहाड़ियों के बीच में अपना अड्डा जमाया। इसमें उनको यह सुभीता था कि मौक़ा पड़ने पर पहाड़ियों में छिप जाते थे। उनका पीछे हटना भी स्थायी नहीं था क्योंकि मौक़ा पाने पर उन लोगों ने एक तरफ़ लाहौर और दूसरी तरफ़ दिल्ली तक धावा कर दिया। ऐसे ही उपद्रवों से व्या-कुल होकर बहादुरशाह दौड़ा हुआ दक्खिन और राजपुताने से वापस आया। सिक्खों के सत्यानाश का उसने पूरा प्रण कर लिया। बड़े ज़ोर से सिक्खों का पीछा किया गया। अंत में बंदा गुरु और उसके साथी एक क़िले में छिप गए। क़िला चारों ओर से घेर लिया गया। बाहर से रसद का आना जाना बंद हो गया। सिखों के लिये दो ही रास्ते थे। वे या तो प्राण की रक्षा करते हुए अपनी मान मर्यादा खोकर शत्रु की शरण में

जायँ, या धड़ में प्राण रहते लड़कर वीरता से शत्रु को रण-शिक्षा देकर अमर पद प्राप्त करें।

गुरु गोविंदसिंह की नसीहत को वे अभी तक भूले नहीं थे। उन्होंने उचित मार्ग का अवलंबन किया। रसद बंद कर दी बंद कर दो, पानी रोकते हो रोक लो, शरीर को दुख होता है तो भले ही हो, जब तक रक्त में वीर पूर्वजों का अंश है टस से मस न होंगे। इस तरह धर्म पर अड़नेवाले, इस तरह मरने जीने की परवा न करके कर्तव्य पालन करनेवाले बहादुरों के सामने मुग़लों के छक्के छूट गए। बहुत से मुग़ल सिपाही मारे गए लेकिन अंत में लड़ते लड़ते सिक्ख सैनिक एक एक करके परम धाम को सिधारे। क़िला ले लिया गया। सिक्खनेता पकड़ा गया। मुसलमानों ने समझा कि वह स्वयं बंदा गुरु है। लेकिन यह बात ग़लत थी। गुरु जी किसी युक्ति से पहले ही निकल गए थे। जो आदमी गिरिफ़्तार हुआ था वह गुरु का एक भक्त चेला था। उसने अपने मन में समझा कि गुरु अगर बच जायँगे तो फिर कितने चेले तैयार कर लेंगे। जब खुद ही नहीं रहेंगे तो उनके स्थान की पूर्ति होना बड़ा कठिन होगा। इन विचारों से बहादुर गुरुभक्त ने गुरुसेवा, देशसेवा, धर्मसेवा और सत्यसेवा के लिये अपना शरीर भेंट किया। उसकी बहादुरी देखकर पहले तो बादशाह को दया आई और आशा की जाती थी कि वह उसको छोड़ देगा लेकिन उसने छोड़ा नहीं। आप-

का वीर लोह के पींजड़े में बंद करके दिल्ली भेजा गया।

सिक्खों की देख भाल के लिये एक सेना छोड़कर बादशाह लाहौर वापस आया। सिक्ख थोड़ी देर के लिये ज़रूर शिकस्त हो गए थे लेकिन जब तक आदमी की आत्मा परास्त न हो उसका पतन हो ही नहीं सकता है। अस्तु सिक्खों ने फिर सर उठाया। बहादुरशाह ने उनको सर करने के लिये तैयारी की होती लेकिन तब तक दुनिया के सरपरस्त, दुनिया के बड़े से बड़े सरहंग को अपनी तिरछी निगाह से सर कर देनेवाले मालिक का हुक्मनामा पहुँचा। ७१ वर्ष की अवस्था में ५ वर्ष बादशाहत करके बहादुरशाह ने इस दुनिया से कूच किया।

सब बातों को देखते हुए आप बहादुरशाह को अच्छा बादशाह कह सकते हैं। उसने बिला वजह किसी तरह का जुल्म नहीं किया। मरहठों और राजपूतों से सुलह करके उसने बड़ी ही दूरदर्शिता का परिचय दिया। अगर उसने ऐसा न किया होता तो औरंगज़ेब के साथ साथ मुगल साम्राज्य का भी अंत हो जाता।

आठवाँ अध्याय ।

जहांदारशाह ।

१७१२–१७१३ ई०

बहादुरशाह के मरने पर उसका बड़ा बेटा जहांदारशाह सन् १७१२ ई० में तख़्त पर बैठा। बादशाह होते ही उसने अपने ख़ानदान के तमाम शाहज़ादों को क़त्ल करवाया। अपनी क़िस्मत से सिर्फ़ फ़र्रुख़सियर बच गया क्योंकि बहादुरशाह के मरने के वक़्त वह बंगाल में था।

जहांदारशाह बड़ी छोटी तबिअत और ख़राब चाल चलन का आदमी था। उसने एक वेश्या रख ली थी जिसको वह बहुत मानता था। अच्छे अच्छे दरजे उसी वेश्या के संबंधियों को दिए जाते थे। इससे ख़ानदानी रईस, पुश्तैनी नौकर, भलेमानुस और सल्तनत के ख़ैरख़्वाह नाराज़ हो गए। इधर बादशाह में ख़ुद इतनी कमज़ोरियां थीं, उधर बेईमान वज़ीर रात दिन दोस्त बनकर दुश्मन का काम कर रहा था। वज़ीर का नाम था ज़ुलफ़िक़ारख़ां। लड़ाई झगड़ों में इसने बराबर जहांदारशाह का साथ दिया था। लेकिन उसने साथ दिया था अपनी भलमनसाहत से नहीं। उसका ख़ास मतलब था स्वार्थ। उसने जहांदारशाह की बुराइयों को अच्छी तरह समझ लिया था। वह जानता था कि ऐसे बेवक़ूफ़ बादशाह

के वक़्त में उसको लूटने खाने का मौक़ा अच्छा मिलेगा। हुआ भी वही जो उसने सोचा था। तख़्त पर बैठते ही जहांदारशाह ने उसको अपना मंत्री बनाया। फ़सादी ज़ुलफ़िक़ार ने मौक़ा पाकर कुल अख़्तियार अपने हाथ में ले लिया। वह जो चाहता था करता था। अगर जहांदारशाह में इतनी कमज़ोरियां न होतीं तो इतना चालाक होते हुए भी ज़ुलफ़िक़ार उसका कुछ नहीं कर सकता था। वज़ीर ने समझ लिया था कि रिआया बादशाह से नाराज़ है ही, इसलिये उसने जो जी में आया करना शुरू किया। उसने कोशिश की कि जो लोग बादशाह से नाराज़ हैं उनको अपनी ओर कर ले। लेकिन तारीफ़ करनी चाहिए लोगों की कि बादशाह की बुराइयों से नफ़रत करते हुए भी राजद्रोह के घोर पाप को उन्होंने अपने सर नहीं लिया।

प्रजा ने ज़रूर भलमनसाहत की। लेकिन इतना कमज़ोर आदमी, रिआया को इतना नाखुश करके, एक मक्कार और बेईमान वज़ीर के इतने पीछे पड़ने पर कितने दिन तक बादशाहत कर सकता था। ख़ास कर ऐसी सूरत में जब सल्तनत का दूसरा दावेदार फ़र्रुख़सियर बंगाल में बैठा हुआ घात लगाए हुए मौक़ा देख रहा था।

फ़र्रुख़सियर ने बंगाल के सूबेदार सैयद हुसेनअली से मदद मांगी। सैयद उसके बाप का बड़ा पक्का दोस्त था। अपने मित्र के लड़के को दुख में पड़ा देखकर उसने सहारा

दिया। वह फ़र्रुख़सियर की मदद के लिये जी जान से तैयार हो गया। हुसेनअली का भाई सैयद अबदुल्लाह इलाहाबाद में सूबेदार था। वह भी अपने भाई के कहने से फ़र्रुख़सियर की मदद के लिये तैयार हो गया। इन दोनों रईसों की मदद से फ़र्रुख़सियर ने इलाहाबाद के पास एक ख़ासी पल्टन इकट्ठी की। फ़ौज जुट जाने पर जहांदारशाह को तख़्त से उतारकर फ़र्रुख़सियर को बादशाह बनाने का यत्न होने लगा।

अच्छी तरह तैयार होकर ये लोग आगे बढ़े। इनको रोकने के लिये बादशाह ने एक सेना भेजी थी जिसको परास्त करके ये लोग अपने इरादे को पूरा करने के लिये बढ़ चले। आगरे के पास जहांदारशाह और ज़ुलफ़िक़ार ने ७ हज़ार सेना लेकर इनका मुक़ाबिला किया। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। इधर बहादुर सैयद के भाइयों की मदद और उधर बादशाहत का ज़ोर। सैयद हुसेनअली ज़ख़मी हुआ और थोड़ी देर तक ख़्याल हुआ था कि वह मर गया। लेकिन उस बहादुर को तो अंतिम मुग़ल साम्राज्य का सूत्रधार बनकर अभी कितने परदे गिराने थे, कितने सीन बदलने थे, कितने दर्शकों को मुग्ध करके कितने दफ़े करतल ध्वनि के साथ 'वंस मोर' (Once more) सुनकर तब कहीं 'लास्ट नाइट' (Last night) करना था। इसलिये मरते मरते भी वह न मरा। अंत में फ़र्रुख़सियर की जीत हुई। जहांदारशाह

छिपकर जान लेकर भागा। बची हुई सेना लेकर ज़ुलफ़िक़ार भी चलता हुआ।

जहांदारशाह ने प्राण बचाने के लिये ज़ुलफ़िक़ार के बाप असदख़ां के घर में शरण ली। उसने समझा कि जिस ख़ानदान ने हमेशा से बादशाहों की मदद की है उस ख़ानदान के होने की वजह से, अपने लड़के के रुतबे का ख़्याल करके और अगर कुछ नहीं तो शरणागत की रक्षा के ख़्याल से असद ज़रूर उसका साथ देगा, उसकी मदद करेगा, कम से कम उसकी जान जोखिम में न पड़ने देगा। लेकिन बेवक़ूफ़ बादशाह का ख़्याल बिल्कुल ग़लत था। दुनिया के धन दौलत और ख़ास कर तख़्त नाम से पुकारी जानेवाली बैठक ने क्या क्या आफ़तें की हैं इसका शायद उस ऐयाश बादशाह को पता न रहा हो।

अगर उसने अपने ख़ानदान की तवारीख़ को पढ़ा होना तब भी उसको पता चल गया होता। हुमाऊं ने अपने भाई कामरां को अंधा कर देना ही काफ़ी नहीं समझा। उस अभागे क़ैदी की आंखों में नश्तर लगाए गए। जब इस पर भी वह न बोला नमक डाल आंखों में नींबू का रस डाला गया।

जहांगीर ने अपने बूढ़े बाप को मरते दम तक तकलीफ़ दी, शाहजहां ने उसके पाप का बदला दिया। औरंगज़ेब ने तो ज़ुल्म और ज्यादतियों की हद कर दी, बाप को क़ैद

करके, भाइयों को एक एक करके तबाह कर डालने पर भी वह शांत नहीं हुआ। बाद में भी कितने बे-गुनाह बच्चे क़त्ल किए गए। बहादुरशाह ने भी कुछ उठा नहीं छोड़ा। आप देख चुके हैं कि खुद हज़रत जहांदारशाह ने तख़्त पर बैठते ही अपने ख़ानदान के तमाम बच्चों को क़त्ल करने की खुशी मनाई थी। अपने भाग्य से या ईश्वर की ओर से जहांदार को दंड देने के लिये उसका भतीजा फ़र्रुख़सियर बच गया था। आज पाप के प्रायश्चित्त भोगने की घड़ी आ पहुँची तब जहांदार साहब घबराए, घबराकर आपने एक पुराने बे-ईमान के पुराने दग़ाबाज़ बाप के हाथ में अपना शरीर और प्राण अर्पण किए। आपने विश्वास किया लेकिन बूढ़े ने इनको धोखा दिया। आते ही उसने इनको हिरासत में लिया। ज़ुलफ़िक़ार के आने पर उसने इनको उसके हवाले किया। बाप ने बेटे को समझाया कि वह जहांदारशाह को नए बादशाह के हवाले करके अपना पुराना रुतबा हासिल करे। उधेड़ बुन के बाद अब्बा साहब की बात ज़ुलफ़िक़ार की समझ में आ गई। आप क़ैदी जहांदार को लेकर फ़र्रुख़सियर के पास पहुँचे। दुश्मन को पाकर वह खुश हुआ। जहांदारशाह को शाही हुक्म से प्राण-दंड हुआ और फ़ौरन् उसकी तामील हुई। अच्छी बात तो यह हुई कि बे-ईमान, शरारती, नमकहराम, और दग़ाबाज़ ज़ुलफ़िक़ार को उसके पाप का बदला मिला। फ़र्रुख़सियर ने फ़ौरन् गला

घुटवाकर उसको मरवा डाला। उसने ग़लती यह की कि बूढ़े असद को जीता जागता छोड़ दिया। उसका क़सूर सबसे बड़ा था, इसीलिये शायद सबसे कड़ी सज़ा भोगने के लिये उसका इंसाफ़ सबसे बड़े हाकिम, सबसे बड़े बादशाह, सबसे बड़े मुंसिफ़, शाहंशाहों के शाहंशाह परमात्मा के हाथ में छोड़ दिया गया।

इस तरह शत्रु को पराजित करके, लड़ाई में जीतकर अपने सहायक सैयद भाइयों की मदद से फ़र्रुख़सियर सन् १७१३ ई० में तख़्त पर बैठा।

नवाँ अध्याय ।

फ़र्रुख़सियर ।

१७१३—१७१६

फ़र्रुख़सियर ने तख़्त पर बैठते ही सैयद भाइयों को उनकी नेकी का बदला दिया । बड़ा भाई अवदुल्लाहख़ां वज़ीर बनाया गया । छोटे भाई हुसेनअली को अमीरुलउमरा यानी सेनापति का दरजा मिला । इस तरह सल्तनत के सबसे बड़े दोनों दरजे इन्हीं लोगों को मिले ।

फ़र्रुख़सियर नाममात्र को बादशाह था । असल में कुल अधिकार सैयदों के हाथ में था । बादशाह उनके हाथों में नाचनेवाली कठपुतली था । वह कुछ तो अहसानों से दबा था और कुछ उनकी ताक़त से डरा था । वह जानता था कि उनसे बिगाड़ करना बैठे बिठाए मौत बुलाना है । इधर तो यह कमज़ोरी का भाव था उधर चित्त में ग्लानि भी होती थी । वह सोचता था कि ऐसी बादशाहत से क्या मतलब जिसमें खुद अपने नौकरों से दबना पड़े । इन दो विपरीत भावों ने उसके चित्त में प्रवेश किया । वह कभी एक ओर ढलता था और कभी दूसरी ओर ।

अंत में आत्मगौरव ने विजय पाई और उसने सोचा कि

जैसे हो वैसे सैयद भाइयों को परास्त किया जाय। मन में यह बात ठानकर भी उसने खुलकर लड़ाई करना उचित नहीं समझा। इसमें उसने बड़ी चतुराई की क्योंकि भेद फ़ौरन् खुल जाने पर वे उसकी शक्ति को चूरमूर कर देते। इस काम में अपनी मदद करने के लिये उसने ज़ुलफ़िक़ारखां के नायब दाऊदख़ां को साथ लिया। इस मतलब से पहले तो हुसेनअली दक्खिन का सूबेदार बनाकर भेजा गया फिर गुप्त रीति से दाऊद उसका मुक़ाबिला करने के लिये रवाना किया गया। दाऊद में जहां बहादुरी थी वहां बेवक़ूफ़ी भी हद दरजे की थी। उसने बहादुरी से हुसेनअली का सामना किया। आशा थी कि वह जीत जायगा लेकिन तब तक उसको अचानक गोली लग गई जिससे उसका काम तमाम हो गया।

मैं कहना भूल गया कि इसके पहले बादशाह ने हुसेन-अली को जोधपुर के राजा अजितसिंह से लड़ने के लिये भेजा था। इधर तो आपने हुसेनअली को अपनी पल्टन का मालिक बनाकर भेजा, उधर अजितसिंह के पास संदेश भेजा कि हुसेनअली के मरने से बादशाह बहुत खुश होंगे। चतुर सैयद ये बातें अच्छी तरह समझता था। इसलिये जितनी जल्दी हो सका उसने राजा से सुलह कर ली।

दाऊद को शिकस्त देकर हुसेनअली मरहठों को परास्त करने की तैयारी करने लगा। तब तक आपस के झगड़े के

कारण सिक्ख फिर जाग उठे। बंदा गुरु ने शाही पल्टन को हराकर लूटपाट करना शुरू किया।

अबदुस्समदखां की मातहती में मुग़ल सेना सामना करने के लिये भेजी गई। सिक्ख परास्त हुए। गुरु और उनके साथी गिरिफ़्तार हुए। उनमें से बहुत से फ़ौरन् क़त्ल किए गए। लेकिन ७४०. सहायकों के साथ बंदा गुरु दिल्ली भेज दिए गए। दिल्ली पहुँचने पर इनकी बड़ी दुर्दशा की गई। भेड़ की खाल पहनाकर ऊंट पर चढ़ाकर वे लोग शहर में घुमाए गए। वे लोग बड़ी निर्दयता से मारे गए। उनको मुसलमान होने के लिये बहुत से लालच दिए गए। लेकिन धर्म देकर प्राणरक्षा करना उन्होंने सीखा नहीं था। साथी सब एक एक करके ७ दिन में क़त्ल किए गए। अकेले बंदा गुरु अब बच गए। बादशाह ने समझा था कि शायद साथियों की दुर्दशा देखकर उनकी अक़्ल ठंढी हो जाय लेकिन गुरु ने धर्म को ज़बरदस्त हाथों से पकड़ा था, जिसको न तो किसी तरह का लोभ ढीला कर सकता था और न किसी तरह का संकट छुड़ा सकता था।

गुरु एक लोहे के पिंजड़े में बंद किए गए। सुनहला कपड़ा पहनाया गया और सर में लाल पगड़ी बाँधी गई। वे शहर में घुमाए गए। नंगी तलवार हाथ में लेकर जल्लाद पीछे खड़ा था। मरे हुए साथियों के सर अगल बगल में लटकाए गए। उसके बाद गुरु के हाथ में कटार देकर हुक्म

दिया गया कि वे अपने लड़के का सर धड़ से अलग करें। इनकार करने पर बच्चा बड़ी बे-रहमी से काट डाला गया। उसका कलेजा निकालकर गुरुजी के चेहरे पर फेंक दिया गया। अंत में आपकी वारी आई। गरम सीकचे से आप का मांस नोचा गया लेकिन धन्य है आत्मिक बल कि चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं पड़ी, घबराहट का नाम भी नहीं था। अकाल पुरुष का नाम लेते हुए आपने सुख से शरीर छोड़ा।

गुरु के मरने के बाद सिक्ख लोग ढूंढ़ ढूंढ़कर मारे गए। थोड़ी देर के लिये सिक्ख लोग दब गए। कभी कभी वे इधर उधर थोड़ा बहुत लूट पाट कर देते थे लेकिन अब इनमें इतना बल नहीं था कि बादशाहत को इनसे किसी तरह का अंदेशा होता।

उस वक्त सिक्खों से कहीं अधिक भयंकर मरहठे हो गए थे। उनके उपद्रव के मारे शाही पल्टन के नाकों दम थे। इनका मुक़ाबिला करने के लिये दाऊदखां भेजा गया। लेकिन उसको किसी तरह की कामयाबी नहीं हुई। विवश होकर हुसेनअली ने सुलह कर ली जिसके मुताबिक़ मरहठों को उनके सब पुराने क़िले वापस मिल गए। उनको दक्खिन की मालगुज़ारी का चौथा हिस्सा चौथ के नाम से वसूल करने का अधिकार मिला। इसके ऊपर से सरदेशमुखी के नाम से दशमांश वसूल करने का हक़ उनको दिया गया।

इसके बदले में साहू राजा को १० लाख रुपए और १५ हज़ार घोड़े देने पड़े। दक्खिन में शांति स्थापित रखने का भार भी उसको दिया गया। असल बात तो यह थी कि मरहठे साहू राजा का आधिपत्य नहीं मानते थे। इसलिये सुलह होने पर भी लूट पाट बंद नहीं हुई। असल बात तो यह थी कि बादशाह ने हुसेनअली को परास्त करने के लिये ही उसको मरहठों से लड़ने के लिये भेजा था। हुसेनअली इस मामले को अच्छी तरह समझता था। इसीलिये उसने इतनी जल्दी सुलहनामा करके दिल्ली का रास्ता लिया। अपना मतलब हल न होते देखकर बादशाह को ग़ुस्सा हुआ। नतीजा यह हुआ कि सैयदों और बादशाह के बीच का मन-मुटाव और भी बढ़ गया।

हुसेनअली का बड़ा भाई अब्दुल्लाहख़ां जितना क़ाबिल था उतना ही आरामतलब भी था। नतीजा यह हुआ कि मंत्रीपद का काम वह मिहनत से न करके उसको अपने नायब रतनचंद पर छोड़े रहता था। रतनचंद की सख़्ती से लोग बहुत नाराज़ रहते थे। फल यह होता था कि वज़ीर दिन दिन ज़्यादा बदनाम होता जा रहा था। बादशाह ने इन बातों का फ़ायदा उठाना चाहा। वह चाहता था कि किसी तरह अब्दुल्लाह को गिरिफ़्तार कर लें। इस काम के लिये उस-ने तैयारी की थी। कहते हैं कि इसी काम के लिये बंगाल से मीर ज़ुमला बुलाया गया था। लेकिन वज़ीर का गिरिफ़्तार

कर लेना इतना आसान नहीं था। इसलिये मीर जुमला हताश होकर अपने सूबे में वापस गया। इस नाकामयाबी से बादशाह हताश नहीं हुआ। उसने वज़ीर के दुश्मनों से दोस्ती पैदा करके उनका एक गिरोह तैयार किया।

वज़ीर के शत्रुओं में जयसिंह सब से प्रधान थे। उनकी नाराज़गी की खास वजह थी। आप जाटों को परास्त करने के लिये तैनात किए गए थे और इन्होंने उस बहादुर जाति को बहुत तंग किया। विवश होकर इन लोगों ने वज़िर की शरण ली। मंत्री ने कृपा करके सुलह कर ली। इसपर जयसिंह ने बहुत बुरा माना। वह बदला लेने के लिये तुला बैठा था। बादशाह ने सोचा कि ऐसे आदमी से बहुत काम चलेगा।

वज़ीर का दूसरा दुश्मन चिनकिलिचखां था। इस अफ़-सर का पूरा हाल आगे चलकर दिया जायगा। यहां सिर्फ़ इतना कह देना काफ़ी होगा कि वह अव्वल नंबर का धोखे-बाज़ आदमी था। चतुर सैयद बंधु उसको पहचान गए थे। इसलिये दंड देने के लिये उन लोगों ने उसको दक्खिन से हटा दिया। चिनकिलिचखां दक्खिन का सूबेदार था। वहां से हटाकर वह मुरादाबाद में कर दिया गया। इसको उसने अपनी बे-इज़्ज़ती समझा। वह ऐसा आदमी नहीं था कि इस अपमान को जल्द भूल जाता। फ़र्रुख़सियर समझ गया कि ऐसे आदमी से बड़ा काम चलेगा। षड्यंत्र में चिनकिलिच

का स्थान जयसिंह के बाद सर्वप्रधान था। वह फ़ौरन् मुरादाबाद से दिल्ली बुलाया गया। बिहार का सूबेदार सरबुलंदखां भी चौकड़ी में शरीक किया गया। चौथे सज्जन थे बादशाह के श्रद्धेय ससुरजी राजा अजितसिंह।

जिस कुलकलंक ने क्षत्री होकर अपनी लड़की एक विधर्मी को भेंट कर दी उसमें इतनी शक्ति कहां रह सकती है कि वह कुछ बहादुरी दिखावे, युद्ध में डटकर अपना जन्म सफल करे। इसलिये अजितसिंह ने सोच विचारकर आगे बढ़ने में संकोच किया। इतना ही नहीं, यह कादर अपने दामाद का साथ छोड़कर उसके शत्रुदल से जा मिला।

अजित को छोड़कर दूसरे तीन साथी अपनी धुन में पक्के थे। उन्होंने अब्दुल्लाह के मारने का पूरा इरादा कर लिया था। लोगों ने सोचा था कि एक जलसे के मौक़े पर काम किया जाय क्योंकि ऐसे वक्त लोगों की भक्ति अधिकतर बादशाह की ओर होगी। इतने में फ़र्रुख़सियर के एक नए दोस्त पैदा हो गए। आप एक नीच जाति के कश्मीरी मुसलमान थे। अपनी ख़ुशामद से उसने बादशाह को ख़ुश कर लिया। उसको रोकनुद्दौला का ख़िताब भी मिल गया। इसने बादशाह को समझा बुझाकर फ़साद को कुछ दिन के लिये मुल्तवी करा दिया। बादशाह एक तो ख़ुद ही डरपोक था, दूसरे एक मंत्री भी वैसा ही मिल गया। ख़ुश होकर बादशाह ने उसको वज़ीर बनाने का वादा किया। उसको उस ज़िल्ले

की जागीर दी जहां का चिनकिलिचखां सूबेदार था ।

बादशाह का अजीब रंग ढंग देखकर जयसिंह को छोड़-कर उसके दूसरे दो साथी नाराज़ हो गए। उन्होंने समझ लिया कि ऐसे तुनुकमिज़ाज आदमी के साथ से कुछ फ़ायदा नहीं हो सकता है। जिसका कोई वसूल नहीं, जिसकी बात का कोई ठिकाना नहीं, वह अपने साथ औरों को भी ले डूबेगा। यह बात सोचकर इन लोगों ने बादशाह का साथ छोड़कर वज़ीर से सुलह कर ली।

अब्दुल्लाह को सब बातों का पता मिल गया। उसने अपने भाई हुसेनअली को ख़बर दी और उसको दिल्ली वापस बुलाया। इन लोगों का आपस का प्रेम भी बड़ा ही अपूर्व था। एक के देखते देखते दूसरे का किसी तरह का अनभल नहीं हो सकता था। अगर एक का पसीना गिरे तो दूसरा अपना ख़ून गिराने के लिये तैयार रहता था। इसी अटल भ्रातृप्रेम के बल से इन दो भाइयों ने सारे हिंदुस्तान में अपना दबदबा जमा दिया था, अपने पुरुषार्थ के बल से दिल्ली के राजसिंहा-सन को कठपुतली का खेल बना लिया था, जब जिसको चाहते बैठाते, जब चाहते उतारते थे। महाराज रामचंद्रजी ने बहुत ठीक कहा है।

"सुत वित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहि बारा॥

अस विचारि जिय जागहु ताता ।
मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता ॥"

राज्य छूटा, माता पिता छूटे, नंगे तपस्वी-भेष में वन वन भटकना पड़ा। पर्णकुटी का निवास, पृथ्वी शय्या और वन्य फल भोजन। ऐसी दशा में लंका के जगद्विजयी राजा रावण से वैर। इन समस्त कठिनाइयों के होते हुए, एक सगा सहोदर, एक अपने मन का भाई पाकर राम ने रावण के छक्के छुड़ा दिए। भारत में सच्चे भाइयों की बड़ी कमी है। जहां लक्ष्मण की तरह सगे सहोदर पैदा होने चाहिए थे वहां देशद्रोही विभीषण की ही यहां भरमार है।

लक्ष्मण सा भाई पाकर अब्दुल्लाह का दिल दूना रहता था। जहां ज़रूरत पड़ी वह छोटे भाई की याद करता था और वह भी सब काम छोड़कर फ़ौरन् हाज़िर होता था। अब की दफ़े संकट देखकर वज़ीर ने हुसेनअली को बुलाया। ख़बर पाकर वह अपने चुने हुए सिपाही लेकर दिल्ली की ओर बढ़ा। जयसिंह ने बादशाह को मुक़ाबला करने के लिये उसकाया। अगर उस वक़्त फ़र्रुख़सियर हिम्मत कर जाता तो शायद उसको आगे चलकर अपना प्राण भेंट न करना पड़ता।

लेकिन उसकी कादरता ने कुछ न होने दिया। हुसेनअली दिल्ली पहुँच गया। शहर के बाहर अपना डेरा डालकर उसने अपने सिपाहियों को शाही क़िले में भेज दिया। एक तरह से बादशाह उनका क़ैदी हो गया था।

हुसैनअली का पहला हुक्म यह था कि जयसिंह अपनी रियासत को वापस भेज दिए जायँ। यह दशा देखकर कुछ पुराने नमकहलाल अफ़सरों ने बादशाह का साथ दिया। इधर शहरवालों ने हुसैनअली के साथी मरहठा सिपाहियों के क़त्ल करने के लिये बग़ावत की। चारों ओर बदअमली सी फैल गई। ऐसे वक़्त में हुसैनअली अपनी फ़ौज के साथ शहर में घुस गया और थोड़े मुक़ाबले के बाद उसने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। फ़र्रुख़सियर गिरिफ़्तार कर लिया गया। जिसने इतना उपद्रव किया, जिसने अपनी ओर से सैयद भाइयों के प्राण लेने में कुछ कसर नहीं छोड़ी, जो उनका अहसान भूलकर उनपर अत्याचार करने की दिन रात तैयारी करता रहा, उसको अब जीवित छोड़ना सैयद बंधुओं के लिये अच्छा नहीं था। इसलिये एक गुप्त स्थान में ले जाकर उन लोगों ने उसका वध करा दिया।

इस कमज़ोर बादशाह के वक़्त में बहुत से औरंगज़ेबी ज़ुल्म फिर से दुहराए गए थे। औरंगज़ेब के पुराने मंत्री इनायतुल्लाहख़ां ने हिंदुओं पर मज़हबी टैक्स लगाया और उसको औरंगज़ेबी ढंग से वसूल करना चाहा। लेकिन वह ताक़त अब कहां थी? लोगों ने शोर मचाया। विवश होकर टैक्स रद करना पड़ा।

बंदा गुरु की दुर्दशा का हाल आप पढ़ ही चुके हैं। वह काम भी औरंगज़ेब का अनुकरण था। इसके अलावा शीया

और सुन्नियों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ । अहमदाबाद में हिंदू और मुसलमानों में लड़ाई हुई ।

असल बात तो यह है कि ईश्वर न करे कि कमज़ोर आदमी को जवाबदेही का काम मिल जाय । जिस तरह कमज़ोर बदन में हज़ार तरह के मर्ज़ पैदा होते हैं, वैसे ही निर्बल शासक के समय में अनेक उपद्रव उठते हैं । फ़र्रुख़सियर की कमज़ोरी के कारण जो जहां पाता था उठ खड़ा होता था । जिस तरह शरीर के भस्म होने पर सब रोग-दोष साथ साथ जल जाते हैं, वैसे ही फ़र्रुख़सियर की मृत्यु के साथ साथ उसकी सब बुराइयां भी जाती रहीं । निष्पक्ष होकर देखने से कहना पड़ता है कि वह कमज़ोर था और यही एक उसका दुर्गुण था ।

फ़र्रुख़सियर के मरने पर सैयदों ने एक बच्चे को तख़्त पर बैठाय । वह तीन महीने में तपेदिक़ की बीमारी से मर गया । उसके बाद एक वैसा ही नादान बच्चा बादशाह बनाया गया । वह पहले लड़के से भी थोड़े दिन में परलोकगामी हुआ ।

सैयदों ने सोचा कि इस तरह कमज़ोर लड़कों के बार बार तख़्त पर बैठाने से कुछ फ़ायदा नहीं । वे तमाशा करते हुए भी नहीं चाहते थे कि उनकी बातों को लोग तमाशा समझें । इसलिये अब की दफ़ा उन्होंने तलाश करके एक तंदुरुस्त लड़का पैदा किया । उसका नाम था रोशनअख़्तर ।

तंदुरुस्ती में औरों से अच्छा होते हुए भी यह लड़का औरों से किसी तरह अधिक पढ़ा लिखा नहीं था। उसकी माता अवश्य विदुषी थी। वह उसको योग्य बनाना चाहती थी, उसका आचरण ठीक करना चाहती थी। अपनी कोशिश में वह किसी दरजे तक कामयाब भी रही लेकिन बालक बादशाह की चाल चलन वह सुधार न सकी। आगे चलकर आप देखेंगे कि वह बड़ा ही ऐयाश और बदचलन बादशाह हुआ। तख़्त पर बैठने पर उसका नाम पड़ा मुहम्मदशाह।

दसवाँ अध्याय ।

मुहम्मदशाह—१७१६ से १७४२ ई०

अभी तक सर्वसाधारण सैयद बंधुओं का आदर करते थे। वे जानते थे कि ये लोग बादशाहत के खैरख्वाह हैं। लेकिन फ़र्रुखसियर के मरने पर लोग शक करने लगे। उनके कान खड़े हो गए और वे समझने लगे कि पहले के कई बादशाहों की भी मौत सैयदों की वजह से हुई।

नाटक का ड्रापसीन बदलनेवाले दोनों भाई अपनी चतुरता के कारण निश्चिंत थे लेकिन लोगों को उनके गूढ़ रहस्य का पता चलने लगा। जितने जल्द जल्द नए परदे उठाए जाते थे उतना ही लोगों को संदेह होता था। फ़र्रुखसियर के बाद इतने जल्द दो लड़कों के मरने से लोग और चौकन्ने हो गए। सैयदों की सेना ज्यों की त्यों थी लेकिन लोगों का विश्वास उठ जाने से उनका बल बहुत घट गया। संसार में बल प्रयोग करके शासन करनेवाले बहुत कम बादशाह हुए हैं। सच्चा शासन प्रेम, विश्वास और प्रजा की संतुष्टता के प्रभाव से हो सकता है।

दोनों भाइयों में भी कुछ मतभेद हो गया। यह हाल देखकर इनके साथी भी कुछ डावांडोल हुए। ऐसी दशा में सल्तनत के काम में भी खराबी आने लगी। असल बात तो

यह है कि जब आदमी का अक़बाल उठ जाता है तो दोस्त भी दुश्मन हो जाते हैं।

इलाहाबाद का हिंदू सूबेदार बाग़ी हो गया। हुसेनअली खुद उसका मुक़ाबिला करने के लिये गया लेकिन उसको परास्त न कर सका। किसी तरह इज़्ज़त बचाने के लिये इलाहाबाद के बदले में अवध का सूबा देकर उससे सुलह की गई। उधर बूंदी में भी बलवा हो गया। पंजाब के दक्खिन में अफ़ग़ान सरदार बाग़ी हो गया। उसने बादशाही पल्टन को शिकस्त दी।

काश्मीर में हिंदू और मुसलमानों में भयंकर बलवा हो गया। शांति करने के लिये बादशाही पल्टन भेजी गई लेकिन जल्द कुछ नतीजा नहीं हुआ। दोनों तरफ़ के हज़ारों आदमी मारे गए और लाखों रुपए का सामान लूटा गया।

सबसे बढ़कर उपद्रव किया चिनकिलिचख़ां ने। वह एक मशहूर तुर्क घराने का था। उसका बाप ग़ाज़ीउद्दीन औरंगज़ेब के ख़ास अफ़सरों में से था। चिनकिलिचख़ां ने भी पहले पहल औरंगज़ेब के वक़्त में नाम पैदा किया था। कहते हैं कि जब जहांदारशाह की तवायफ़ ने लोगों के नाकों दम कर दिए थे, चिनकिलिच ने उसका ऐब नहीं माना।

मशहूर होते होते वह दक्खिन का सूबेदार हो गया। उसने पहले फ़र्रुख़सियर का साथ किया था लेकिन जब वज़ीर होने की उम्मीद न रही तो वह उसके दुश्मनों के दल

में मिल गया। फ़र्रुख़सियर के मरने पर उसको अपना सूबा भी न मिला। वह मालवा के छोटे से सूबे का अफ़सर बनाया गया। यह अपमान वह कैसे भूल सकता था ? उसने सोच लिया था कि कभी न कभी ज़रूर बदला लेंगे। अपना मतलब पूरा करने के लिये, उसने अनेक तरह के हीले करके पल्टन इकट्ठा करना शुरू किया।

उसका बढ़ता हुआ बल देखकर सैयद बंधु घबरा गए। उन्होंने उसको कई तरह का लालच देकर हटाना चाहा। लेकिन इससे उसका हौसला और भी बढ़ गया। उसको अपने बल में विश्वास होने लगा। उसने जब दिल्ली में बल जमाने का मौक़ा न देखा, तो दक्खिन की ओर बढ़ा। वहां मुसलमानों और मरहठों से सहायता मिलने की आशा थी जो बहुत अंशों में पूर्ण हुई। बाग़ी होने पर वह फ़ौरन् नर्मदा की ओर बढ़ा। वहां जाकर इसने असीरगढ़ के क़िले पर क़ब्ज़ा किया और उस जगह के बहुत से अफ़सरों को अपनी राय में कर लिया। दिलावरख़ां एक सेना लेकर उसका पीछा करने के लिये तैनात किया गया। उधर औरंगाबाद में आलमअलीख़ां उसको दंड देने के लिये पहले से बैठा था।

चिनकिलिचख़ां जानता था कि दिलावर और आलमअली की मिली हुई सेना का सामना करना बड़ा कठिन है। वह यह भी जानता था कि दिलावरख़ां चिड़चिड़ा आदमी है।

दिलावरख़ां अभी आलमअली से न मिल पाया था कि चिन-क़िलिच ने मुक़ाबिला कर दिया। दिलावर जानता था कि सारी दुनिया के साथ लड़ने के लिये वह अकेला काफ़ी है। इसलिये लड़ाई छिड़ गई। बुरहानपुर के पास घोर युद्ध हुआ। चिनक़िलिच की जीत हुई और दिलावरख़ां मारा गया।

आलमअली के बहुत से अफ़सर चिनक़िलिच से मिल गए। तिस पर भी उसकी पल्टन बड़ी ताक़तवर थी। चिन-क़िलिच से मुठभेड़ हुई। बरार सूबे के बल्लापुर स्थान के नज़दीक लड़ाई हुई। दोनों तरफ़ से किराए के मरहठे सिपाही लगाए गए थे। अंत में आलमअली परास्त हुआ और मारा गया। चिनक़िलिचख़ां का पैर जम गया, उसका नाम दूर दूर तक फैल गया। वह दक्खिन का ख़ुदमुख़्तार बादशाह न होते हुए भी सब बातों में स्वतंत्र था।

इन बातों से सैयद बंधु घबरा गए। उनकी समझ में नहीं आता था कि क्या करें। गो कि सब काम बादशाह की राय से हुआ था लेकिन जिसको लोगों ने तमाशा समझा था वह तमाशा न रह गया। बादशाह चाहता था कि चिनक़िलिच-ख़ां सैयदों से लड़कर उनका बल तोड़ दे लेकिन वह सैयदों को हराकर ख़ुद बादशाह के हाथ से भी निकल गया।

जो लोग सल्तनत के ख़ैरख़्वाह थे वे डर गए और मुग़ल राज्य के सर्वनाश का स्वप्न देखने लगे। उनका विश्वास पक्का

करने के लिये बड़ा भारी भूकंप आ गया। लोगों ने समझा कि अब बुरे दिन आनेवाले हैं। इधर सच्चे और झूठे विचारों से लोगों का विश्वास उठता जाता था और उधर सैयदों का भी धैर्य छूटता जाता था। कवि ने ठीक कहा है।

"जाकहँ प्रभु दारुण दुख देहीं।
ताकर मति पहिले हरि लेहीं॥"

अपनी मा के सिखाने से बादशाह ने सैयदों से कोई मुख़ालिफ़त नहीं दिखाई। वह जानता था कि नावक़्त दुश्मनी करके फ़र्रुख़सियर की तरह प्राण से हाथ धोना पड़ेगा। वह चुप चाप मौक़ा देख रहा था। सैयदों को वलथक होते देखकर वह स्वतंत्र होने का उपाय सोचने लगा। इस काम में मुहम्मद अमीनख़ां से उसको सहायता मिलती थी। अमीन उन लोगों में से था जिन्होंने फ़र्रुख़सियर की बेवक़ूफ़ी से उसका साथ छोड़कर सैयदों से ऊपरी दोस्ती करली थी। उनसे मिलकर वह दिन रात उनकी जड़ खोदने की फ़िक्र में रहता था। वह तुर्की भाषा में बादशाह से बात चीत किया करता था। हिंदुस्तानी सैयद वह भाषा नहीं समझ सकते थे। इस तरह सब के सामने भरी सभा में वह बादशाह के साथ गुप्त वार्ता कर लिया करता था। इससे उसको बादशाह के हृदय का भेद मिल जाया करता था। ऐसा करके उसने धीरे धीरे एक गिरोह तैयार करना शुरू किया। दूसरा आदमी जिसने इस काम में सहायता की सआदतख़ां था। वह

खुरासान का सौदागर था। बादशाही नौकरी में बढ़ते बढ़ते उसको सेनापति का पद मिल गया था।

सैयदों को इस गुप्त रहस्य का कुछ कुछ पता चल गया। वे बड़ी कठिनाई में पड़े। उधर चिनकिलिचख़ां का मुक़ाबिला करना, इधर बादशाह को अपने क़ाबू में रखना, दोनों कामों का एक साथ होना बड़ा कठिन था। अंत में यह तै हुआ कि हुसेनअली बादशाह और उसके साथियों को लेकर दक्खिन में जाय और अब्दुल्लाह दिल्ली में रहकर अपनी खानदान का असर क़ायम रखे। यह बात निश्चय करके दोनों भाई आगरे से रवाना हुए। यह उनका अंतिम मिलन था। बिछुड़ते समय उनके हृदय काँप रहे थे, दिल दहलता था। उनके चित्त में शंका हो रही थी। मालूम होता था कि कोई घोर आपत्ति आनेवाली है। लेकिन दूसरी कोई सूरत नहीं थी। इसलिये कलेजा कड़ा करके वे पृथक् हुए और हमेशा के लिये एक दूसरे से बिदा हुए।

शत्रुओं ने काम करने का यह अच्छा मौक़ा देखा। हुसेन-अली के मारने की तैयारी हो गई। मीर हैदर नाम के एक जंगली आदमी ने इस काम को उठाया। वह निहायत वहशी था और मुश्किल से मुश्किल और ख़राब से ख़राब काम के लिये तैयार रहा करता था। जब हुसेनअली पालकी पर चढ़कर जा रहा था, हत्यारे ने एक दरख़्वास्त लिखकर पेश करनी चाही। साथियों ने उसको आने से

रोका लेकिन हुसेनअली ने उसको बुला लिया, बुलाकर अर्ज़ी उसके हाथ से ले ली और उसको पढ़ने लगा। इतनी देर में मौक़ा देखकर मीर हैदर ने कटार मार दी। हुसेनअली फ़ौरन् मृतक होकर नीचे गिर पड़ा। साथियों ने जल्लाद को बोटी बोटी काट डाला, लेकिन इससे क्या हो सकता है। वह जिस काम के लिये आया था वह पूरा हो गया। मरने के लिये तो पहले ही से तैयार होकर आया रहा होगा। हुसेनअली के साथियों और उसके दुश्मनों में खूब युद्ध हुआ। लड़ाई शांत करने के लिये बादशाह प्रकट हुआ। लोगों को मालूम हो गया कि बादशाह सैयद भाइयों के ख़िलाफ़ है।

नतीजा यह हुआ कि बचे बचाए लोगों ने भी सैयदों का साथ छोड़ दिया। बहुत से सैयद आकर बादशाह से मिल गए। दिल्ली पहुँचने के पहले ही अब्दुल्लाहख़ां को यह ख़बर मिली। उसको कितना दुख हुआ होगा इसको आप खुद सोच सकते हैं। लेकिन अब बैठकर दुख मनाने का वक़्त नहीं था। उपाय सोचना था अपनी रक्षा का। पहले उसको बादशाह की आड़ में शिकार खेलना रहता था। भीतर चाहे बैर ही क्यों न रहा हो, बाहर सब लोग जानते थे कि जो कुछ किया जाता है बादशाह और बादशाहत के नाम से किया जाता है।

लेकिन अब यह बात न रही। अब खुलकर बादशाह का

सामना करना था। हिंदुस्तान एक ऐसा देश है जहां राज-भक्ति लोगों के लिये स्वाभाविक है। जिस तरह हमारी स्त्रियों को पातिव्रत सिखाया गया है वैसे ही हमको राजभक्ति बतलाई गई है। पति लंगड़ा हो, लुंजा हो, कोढ़ी भी हो लेकिन स्त्री के लिये वह ईश्वर है, वह उसका सर्वस्व है। इसी तरह राजा चाहे अन्यायी, दुराचारी, मूर्ख और दुखद क्यों न हो, प्रजा को उसकी आज्ञा भंग करने का अधिकार नहीं है क्योंकि राजा ईश्वर का अंश लेकर अवतार लेता है। ऐसी दशा में बादशाह के दुश्मन सैयद अब्दुल्लाह की मदद करने-वाले बहुत थोड़े आदमी निकले। जहां तहां उसके ख़िलाफ़ बलवा होने लगा। लेकिन तकलीफ़ पड़ने पर बहादुरों के हौसले बढ़ जाते हैं। यही हाल अब्दुल्लाह का हुआ। वह मरने मारने को तैयार हो गया। उसने सोचा कि जब भाई न रहा तो अकेले जीकर क्या करना है? जब मरना ही है तो डर किस बात का। इस तरह साहस करके उसने एक शाहज़ादे को तख़्त पर बैठाया और उसके नाम से हुक्म जारी किए। नए बादशाह के लिये उसने पल्टन इकट्ठी करना शुरू किया।

लोग जान गए थे कि अब अब्दुल्लाह का उखड़ा हुआ पैर जम नहीं सकता है। इसलिये बड़े आदमियों ने उसका साथ नहीं दिया। लेकिन लंबी तनख़्वाहें देकर उसने नए रंगरूटों की एक सेना तैयार कर ली। अपने भाई के मरने के १५ दिन के भीतर ही उसने पल्टन लेकर कूंच कर दिया।

जाटों का राजा चूड़ामणि आकर उससे मिल गया। इसके अलावा हुसेनअली के बहुत से पुराने सिपाही वापस आए।

इधर मुहम्मदशाह को जयसिंह और रुहेलों से मदद मिली। जयसिंह ने ४ हज़ार सवार भेजे थे। आगरे और दिल्ली के बीच में मुठभेड़ हुई। ग़रीब अब्दुल्लाह हार गया और क़ैद कर लिया गया। मुहम्मदशाह के लिये तारीफ़ की बात है कि उसने उसका प्राण नहीं लिया।

धूमधाम से बादशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। सच पूछिए तो इसी तारीख़ से मुहम्मदशाह की बादशाहत कहनी चाहिए। लोगों को बड़े बड़े इनाम और दरजे दिए गए। मुहम्मद अमीन को वज़ीर का दरजा दिया गया। लेकिन वह उस पद का सुख न भोग सका। फ़ौरन् उसकी मौत हो गई। इतनी अचानक मौत में अकसर ज़हर का शुबहा होता है लेकिन इस सूरत में दूसरी ही वजह बयान की जाती है, जिसका मानना या न मानना आपके अधिकार में है।

कहते हैं कि दिल्ली में एक फ़क़ीर आया था। उसने अपना एक नया मज़हब निकाला था और अपनी मनगढ़ंत भाषा में एक धर्मग्रंथ भी तैयार किया था। उसके बहुत से शागिर्द हो गए थे और लोगों में भी उसका अच्छा प्रभाव फैल गया था। मुहम्मद अमीन को नया नया मंत्री पद मिला था। उसने फ़क़ीर को दबाने और धमकाने के लिये बहुत से सिपाही भेजे। हुक्म दिया गया था कि फ़क़ीर

क़ैद कर लिया जाय। लेकिन फ़क़ीर की गिरिफ़्तारी के पहले वज़ीर ख़ुद बीमार पड़ गया। लोगों ने जाकर महात्मा से क्षमा मांगी लेकिन उन्होंने कहा कि बोला हुआ वचन और छोड़ा हुआ तीर वापस नहीं आता है। थोड़ी देर में मुहम्मद अमीन का देहांत हो गया।

चिनकिलिचख़ां क़ायम मुक़ाम वज़ीर हुआ। वह आसफ़-जाह के ख़िताब से मशहूर हुआ। इसके अलावा हर रोज़ बादशाहत की बरबादी की ख़बर आने लगी। सैयद भाइयों ने अजितसिंह की ख़ैरख़्वाही में उसको गुजरात का सूबा दिया था। मुहम्मदशाह ने अपना रिश्ता निबाहने के लिये उसको अजमेर की जागीर दी। शाही मुहर से दोनों सूबों की सल्तनत उसको मिल गई थी। लेकिन लूटपाट के दिन में मुहर और क़ब्ज़ा कौन देखता है ? अजितसिंह की ओर से कोई राजपूत नायब राज्य कर रहा था। मुसलमानी प्रजा ने उसको निकालकर बाहर किया। वह भागकर अजितसिंह के पास जोधपुर में गया। क्रोधित होकर अजित ने अजमेर पर हमला किया और लूटपाट करते हुए रेवारी होते हुए दिल्ली से पचास मील की दूरी पर वह पहुँच गया। उसको रोकने की बड़ी कोशिश हुई लेकिन कुछ नतीजा नहीं हुआ। अंत में सुलह हुई और अजमेर अजित को वापस मिला।

कुछ दिन के बाद आसफ़जाह ने वज़ीर के काम का

चार्ज लिया। मुक़र्ररी का हाल तो उसको बहुत पहले मालूम हो गया था लेकिन उसको अपनी दक्खिन की सल्तनत से छुट्टी न थी। दिल्ली के बरायनाम बादशाह के वज़ीर होने की जगह दक्खिन का ख़ुदमुख़्तार बादशाह होना वह ज्यादा पसंद करता था। इसलिये सबसे पहले दक्खिन में पैर जमा लेना उसने मुनासिब समझा। इसके लिये मरहठों से अनेक लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। उनसे निपट लेने पर वह दिल्ली आया।

दरबार में अजब अंधेर मचा हुआ था। न तो कोई वसूल था और न कोई क़ायदा क़ानून था। बादशाह रात दिन ऐश में चूर रहता था। उसके साथी भी उसीकी उम्र के नाच रंगवाले लोग थे। सल्तनत क्या थी भठियारख़ाना था। बादशाह वैसे तो ऐयाशी में डूबे ही रहते थे लेकिन एक ख़ास तवायफ़ से उनका विशेष प्रेम था। वह जो चाहती वही होता था। यह दशा देखकर आसफ़जाह ऊपर से नाराज़ होता था लेकिन मन ही मन प्रसन्न होता होगा क्योंकि उसको तो अपनी अलग बादशाहत बनाने की धुन पड़ी थी। वह जानता था कि ज्यों ज्यों दिल्ली की सल्तनत कमज़ोर होगी त्यों त्यों उसको अपना ज़ोर जमाने का मौक़ा मिलेगा। यह होते हुए भी उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि दिल्ली की बादशाहत को दबा बैठता। उसमें इतनी चालाकी भी नहीं थी कि अपनी बातों से बादशाह को ख़ुश कर लेता।

जिस तरह आसफ़जाह संदेह में पड़ा था वैसे ही बादशाह भी ससपंज में था । वह न तो आसफ़जाह को खुलकर दबाना चाहता था और न उसमें उसका विश्वास जम सकता था ।

अंत में बादशाह ने एक युक्ति सोची । गुजरात का सूबेदार हैदरकुली बादशाह के साथ देनेवालों में से था । लेकिन अपने ग़रूर से उसने उसको नाखुश कर लिया था । सोचा गया कि आसफ़जाह से अगर वह भिड़ा दिया जाय तो दोनों आपस में लड़कर सर हो जायँगे और इस तरह दोनों बादशाह के खुश करने की कोशिश करेंगे । हैदर को हुक्म दिया गया कि वह गुजरात का सूबा आसफ़जाह को दे दे । जैसी आशा की गई थी, हैदर ने लड़ाई करने की तैयारी कर दी । यह सब होने पर भी बादशाह की हिकमत न चली, क्योंकि आसफ़जाह ने हिकमत से काम लिया । हैदर की सेना भागकर दुश्मन की ओर चली आई । इसलिये बहुत जल्द लड़ाई ख़तम करके, एक नए सूबे की जीत से अपना बल और बढ़ाकर आसफ़जाह दिल्ली वापस आया ।

आसफ़जाह के लौटने के पहले जाटों ने आगरे के नायब सूबेदार को मार डाला । बदला लेने के लिये जयसिंह खुद तैनात किए गए । कहना नहीं होगा कि जयसिंह जाटों के पुराने दुश्मन थे । आपको अपनी ताक़त दिखाने और ख़ैरख़्वाही लूटने का बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ लगा । इसी

बीच में जाट राजा चूड़ामणि का देहांत हो गया। जयसिंह को चाल चलने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा। आपने चूड़ामणि के भतीजे को उसके लड़के के ख़िलाफ़ खड़ा करके उसको राजा बना दिया। उसने दिल्ली की सल्तनत को मालगुज़ारी देना क़बूल किया।

बादशाह और आसफ़जाह का मनमुटाव नहीं मिटा। तब तक आसफ़जाह ने कोई हीला ढूंढ़कर अपना इस्तीफ़ा भेज दिया और ऐसा करके दक्खिन का रास्ता लिया। बादशाह खुश हुआ। उसने नहीं सोचा कि उस तारीख़ से आसफ़जाह स्वतंत्र राजा हो गया और दक्खिन का मशहूर सूबा दिल्ली की सल्तनत से निकल गया। बादशाह की खुशी की वजह यह थी कि आसफ़जाह के फ़सादों से उसको छुटकारा मिला। बाद में उसको मालूम हो गया कि दक्खिन में खुदमुख़्तार होकर आसफ़जाह ने उसका जितना बड़ा नुक़सान किया उतना शायद वह दिल्ली में रहकर नहीं कर सकता था। अब उसने आसफ़जाह का हौसला रोकने का इरादा किया। इस काम के लिये मोबारिज़ख़ां तैनात किया गया। वह हैदराबाद का सूबेदार था। उसको हुक्म हुआ कि वह आसफ़जाह से दक्खिन की सल्तनत वापस ले ले। बादशाह के हुक्म से वह दक्खिन की ओर रवाना हुआ। वहां जाकर उसने एक ज़बरदस्त फ़ौज इकट्ठी की।

मोबारिज़ को अपने बल का भरोसा था और आसफ़जाह को अपनी बुद्धि का । आसफ़जाह बहुत दिन तक लिखा पढ़ी करता रहा और इस बीच में मोबारिज़ के साथियों में फूट फैलाता रहा। अंत में जब उसने देखा कि इससे काम नहीं चलेगा, लड़ाई छेड़ दी गई । भीषण युद्ध के बाद आसफ़जाह फ़तहयाब रहा । मोबारिज़खां पराजित हुआ और मारा गया । चूंकि बादशाह ने खुलकर मुक़ाबिला नहीं किया था, आसफ़जाह ने मोबारिज़ का सर उसके पास भेजकर उसको मुबारकबादी दी।

इसके बाद आसफ़जाह हैदराबाद में रहने लगा । गो कि दिल्ली की सल्तनत से हर तरह आज़ाद हो गया था, फिर भी वह कभी कभी नज़र और तुहफ़े भेजता रहा । दक्खिन में उसको बादशाह से कोई डर नहीं था । लेकिन दूसरे ज़बरदस्त दुश्मन उसके लिये बैठे हुए थे और वे दुश्मन थे मरहठे लोग। वे लोग बहादुर तो थे ही, उनमें मेल भी बहुत था । ऐसे वीरों की संगठित और संयुक्त शक्ति का सामना करना आसफ़जाह के लिये आसान काम नहीं था। इसलिये उसने हिकमत से काम लिया । साहू के ख़िलाफ़ उसने संभा को दावीदार खड़ा किया। आसफ़जाह की मदद की वजह से संभा का पल्ला भारी हो गया था और ख़्याल किया जाता था कि साहू को नीचा देखना पड़ेगा। लेकिन साहू के चतुर मंत्री बालाजी विश्वनाथ ने ऐसा नहीं होने दिया।

बालाजी विश्वनाथ पेशवा ख़ानदान की जड़ डालनेवाला और पहला पेशवा था। वह पहले कोंकन सूबे के एक गांव का पटवारी था। इसके बाद वह जादू राजा के यहां नौकर हुआ। अंत में वह साहू की सेवा में आया। उसने बहुत बड़े बड़े काम किए थे। मरहठा शासन को उसने बहुत दृढ़ और सुसज्जित बनाया।

यह उसी की कोशिश का नतीजा था कि मरहठों को हुसेनअली से बहुत सा इलाक़ा और धन मिला। हुसेन-अली के साथ जो पल्टन दिल्ली गई थी उसका भी सेनापति वही था। उस वक़्त साहू ने अपने को दिल्ली राज्य का मात-हत माना था और उसी नाते से बालाजी विश्वनाथ दिल्ली गया था। हुसेनअली के परास्त होने पर भी साहू ने बाद-शाह से अपना रिश्ता क़ायम रखा। फ़र्रुख़सियर के मरने के बाद भी बालाजी दिल्ली में मौजूद था। उसने मुहम्मदशाह से पुराने सुलहनामे की तसदीक़ करवाई। ऐसा हो जाने से साहू का हक़ क़ायम हो गया और अपने मरने के पहले बाला-जी ने सब दुश्मनों से साहू का छुटकारा करा दिया। अक्टूबर सन् १७२० ई० में बालाजी का देहांत हो गया।

अभी तक जो कुछ इलाक़े मरहठों के पास थे वे महज़ लूट के माल थे। लेकिन सुलहनामे की वजह से वे अब उन की मिलकियत हो गए। अब किसी तरह का झगड़ा नहीं

रहा। इस तरह शांति स्थापन करने के बाद बालाजी ने शासन में सुधार करने का विचार किया।

उस वक्त अगर बालाजी चाहता तो चौथ और सिरदेश-मुखी के टैक्सों की जगह पर उसको नए इलाक़े मिल जाते, लेकिन उसने ऐसा करना मुनासिब नहीं समझा। कारण यह था कि मरहठे बलवान् थे और उनके दिल में अभी बड़े बड़े हौसले थे जिनके पूरा करने के लिये वे सब जगह हाथ पैर फैलाए रहना मुनासिब समझते थे।

बालाजी के मरने पर उसका लड़का बाजीराव दूसरा पेशवा हुआ। वह अपने प्रतापी बाप से भी अधिक बलवान् और बुद्धिमान् था। कहते हैं कि पेशवाओं में उसकी टक्कर का एक भी नहीं हुआ था और न शिवाजी महाराज को छोड़-कर दूसरा कोई मरहठा उसके जोड़ का हुआ था। बाजी-राव को नातजरबेकार समझकर उसके पेशवा होते ही प्रतिनिधि ने अड़चनें डालना शुरू किया। मैं यह कहना भूल गया कि मरहठा राज्य में राजा के बाद सबसे बड़ा पद प्रति-निधि का था। उसके बाद पेशवा का दरजा था।

प्रतिनिधि ने कहा कि जो मुल्क जीत लिया गया है पहले उस पर पक्का अधिकार जमाना चाहिए और तब तक नई जीत मुलतवी रखनी चाहिए। बाजीराव ने कहा कि दूसरे इलाक़ों पर हमला करते रहने से मरहठों में आपस में मेल रहेगा। उसने यह भी कहा कि महा-राष्ट्र बनाने के

पहले ज़रूरत है कि लड़ाई और हमले करके मरहठों को युद्धशील और बलवान् बनाया जाय। इस विचार से बाजी-राव ने प्रस्ताव किया कि मुग़ल राज्य के उत्तरी हिस्से पर हमला कर दिया जाय। वह जानता था कि मुग़ल सल्तनत इतनी कमज़ोर हो गई है कि एक धक्के में गिर पड़ेगी। वह कहता था कि मुग़ल राज्य के विशाल वृक्ष के गिराने के लिये उसकी सड़ी हुई जड़ में धक्का लगाना अधिक उत्तम होगा। वृक्ष के गिर जाने पर शाखें और पत्ते अपने आप गिर पड़ेंगे। बाजीराव के वचनों में वीरोचित प्रभाव था। उसने इतनी उत्तमता से अपने पक्ष का समर्थन किया कि राजा उसकी ओर हो गया। अपना प्रभाव पड़ता देखकर बाजी-राव ने राजा से पूछा "क्या मैं महाराष्ट्रीय झंडा नर्मदा के उस पार ले जा सकता हूं?" राजा ने प्रसन्न होकर जवाब दिया।

"मैं आशा करता हूं कि तुम उसको हिमालय पर्वत पर ले जाकर गाड़ दोगे।"

राजा का उत्तर सुनकर और लोगों ने भी बाजीराव की बात का समर्थन किया। वीर पेशवा ने दृढ़ता से अपना कार्य उठाया।

इस काम में मुग़लों की मूर्खता से भी उसको बड़ी सहा-यता मिली। मोबारिज़ से लड़ाई होने के थोड़े दिन पहले आसफ़जाह मालवा और गुजरात के सूबे से हटा दिया गया

था। उसकी जगह पर मालवा में राजा गिरधर तैनात किया गया था लेकिन वहां की सेना दक्खिन की लड़ाइयों में बुला ली गई। मौक़ा देखकर बाज़ीराव ने हमले शुरू किए। गिरधर में उसका सामना करने की ताक़त कहां थी !

इधर गुजरात में आसफ़जाह का चचा हामिदख़ां तैनात किया गया था। मरहठों का मुक़ाबिला करना तो अलग रहा उसने उल्टे उन लोगों से मदद मांगी। उसने उन लोगों को चौथ और सिरदेशमुखी देना क़बूल किया। सरबुलंद-ख़ां ने हामिद को ज़रूर शिकस्त दी, लेकिन मरहठों को परास्त करने की शक्ति उसमें नहीं थी, इसलिये हामिद के मंजूर किए हुए टैक्स उसने भी क़ायम रखे।

सब कुछ होते हुए भी आसफ़जाह की ताक़त काफ़ी बढ़ गई थी। उसके दिल में मरहठों के दबाने का हौसिला हुआ। उसने इस काम के लिये उनमें फूट पैदा करने की कोशिश की। उसने इस काम को सिद्ध करने के लिये प्रतिनिधि से सुलहनामा किया जिसके मुताबिक़ चौथ और सिरदेशमुखी के बदले नए इलाक़े दिए जाने के वादे हुए। लेकिन बाजीराव कब ऐसी संधि होने देता। उसने इसका विरोध किया। प्रतिनिधि में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह कोई काम बाजीराव के ख़िलाफ़ कर लेता। अस्तु आसफ़जाह का सब परिश्रम निष्फल हुआ। उस चतुर राजनीतिज्ञ ने दूसरी युक्ति सोची। संभा अब भी जीता जागता था। उसने कोल्हा-

पुर में अपनी राजधानी क़ायम की थी और रियासत का अब भी वह दावेदार था। महज़ झगड़ा खड़ा करने के लिये आसफ़जाह नें टैक्स देना रोक दिया। उसने कहा कि पहले साहू और संभा आपस में तै कर लें कि उनमें से राजा कौन है।

उसकी यह कुटिलता देखकर साहू बड़ा नाराज़ हुआ। बाजीराव ने आसफ़जाह की दुष्टता का बदला देने का निश्चय किया। उसने आसफ़जाह के इलाक़े पर हमला किया। सबसे पहले बुरहानपुर पर धावा हुआ। संभा ने आसफ़जाह का साथ दिया।

जब आसफ़जाह सामना करने के लिये आया बाजीराव गुजरात की ओर चला गया। वहां लूटपाट करके और आग लगाकर वह बड़ी फुर्ती से दक्खिन में वापस आया। जहां आसफ़जाह की सेना पड़ी थी, उसके चारों ओर के मुल्क को वह बरबाद करने लगा। जब पल्टन भूखों मरने लगी, आसफ़जाह ने सुलह कर ली। उसने संभा का साथ छोड़ दिया और पहले से अधिक मुलायम शर्तों पर साहू से दोस्ती की।

इधर बाजीराव ने आसफ़जाह का मद चूर्ण किया, इधर प्रतिनिधि ने संभा को शिकस्त दी। हार मानकर संभा ने साहू को राजा स्वीकार किया। कोल्हापुर के पास थोड़ा सा इलाक़ा उसकी गुज़र के लिये दिया गया। इस कामयाबी के

होते हुए भी प्रतिनिधि की उतनी इज़्ज़त नहीं थी जितनी पेशवा की थी।

दोनों तदबीरों के नाकामयाब होने पर आसफ़जाह कोई तीसरी युक्ति सोचने लगा। अब की बार उसने पुराने सेनापति के दाबारी ख़ानदान के मुखिया को उसकाया। वह मुखिया पेशवा की उन्नति देखकर भीतर ही भीतर जल रहा था। आसफ़जाह की सहायता पाकर उसने ३५ हज़ार आदमियों की सेना इकट्ठी की। उनको लेकर वह दक्खिन की ओर बढ़ा और ज़ाहिर किया कि वह साहू राजा को पेशवा के पंजे से छुड़ाने जा रहा है। बाजीराव के पास इतनी बड़ी सेना नहीं थी लेकिन उसमें साहस और वीरता थी। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। वह फ़ौरन् नर्मदा पार करके गुजरात में गया। बरौदा के पास दाबारी का सामना हुआ। लड़ाई में बालाजी की जीत रही।

दाबारी ने अपनी हार देखकर अपने लड़के को अपना वारिस बनाया। चूंकि लड़का नाबालिग़ था उसकी मा वली मुक़र्रर हुई। दाबारी से छुट्टी पाकर बाजीराव आसफ़जाह को सबक़ सिखाने के लिये तैयारी करने लगा। लेकिन थोड़े दिन के बाद उसने सोचा कि आसफ़जाह से दुश्मनी करने में नुक़सान ही नुक़सान है। आसफ़जाह ने भी सोचा कि बाजीराव से वैर करने में उसका कल्याण नहीं है। इन बातों को सोच विचारकर दोनों ने आपस में सुलह कर ली।

बाजीराव का इरादा था कि महाराष्ट्र राज्य केवल दक्खिन में परिमित न रहकर हिंदुस्तान भर में फैले। लेकिन मुग़ल कब यह बात खुशी से बरदाश्त कर सकते थे ? इसलिये उसके रास्ते में बराबर अड़चनें डाली जाती थीं। बाजीराव के गुजरात छोड़ते ही चौथ देना बंद कर दिया गया। सरबुलंदखां वहां से हटा दिया गया। उसकी जगह पर अजितसिंह का लड़का अभयसिंह तैनात किया गया। लेकिन अभय में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह मरहठों का सामना कर सकता। इस छेड़ छाड़ से नाराज़ होकर बाजीराव ने क्रोधित होकर जमुना पार की। जमुना पार करके देखते देखते वह दिल्ली के फाटक पर पहुँच गया। इस काम से बाजीराव की बहादुरी मालूम होती है। लेकिन वीरता के साथ साथ उसमें राजनीति-पटुता भी अपूर्व थी। दिल्ली पहुँचकर वहां और अपने रास्ते में भी वह बहुत कुछ लूट पाट कर सकता था लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इससे लोगों ने समझ लिया कि मरहठे निरे लुटेरे नहीं हैं। वे जहां युद्ध करके मुल्क जीत सकते हैं वहां उस देश का प्रबंध भी उत्तम प्रकार से कर सकते हैं, इस तरह बादशाह पर अपना रोब जमाकर शाही फ़ौज के छक्के छुड़ाकर बाजीराव दक्खिन में पहुँचा।

उस समय मुग़ल बादशाहत की जो दशा हो गई थी, उसका ठीक पता इससे मिल सकता है कि बड़ी कोशिश के बाद भी मरहठों का मुक़ाबिला करने के लिये ३४ हज़ार से

अधिक सेना इकट्ठी न हो सकी। सादतखां के भतीजे सफ़दर-जंग ने बड़ी मदद की। सब कुछ होते हुए भी बाजीराव दबाया न जा सका। आसफ़जाह ने विवश होकर संधि कर ली। नर्मदा और चंबल के बीच का मुल्क मरहठों को दे दिया गया। उसने बादशाह से ५० लाख रुपए भी मंजूर कराने के लिये कोशिश करने का वचन दिया। इसके लिये वह दिल्ली चला गया। उम्मीद थी कि आसफ़जाह की कामयाबी होती लेकिन तब तक एक ऐसी बात हो गई कि दूसरे कामों के लिये फ़ुर्सत ही नहीं थी।

भारतवर्ष अपने धन वैभव, अपनी सज्जनता, अपनी उदारता और सहनशीलता से लुटेरों की नज़रों में गड़ता रहा है। हमने अपने परिश्रम और सत्यता से कुछ धन एकत्र किया लेकिन उस धन की रक्षा करने के लिये यत्न नहीं किए। हमने सोना जमा किया लेकिन उसकी रक्षा के लिये लोहे के अस्त्र शस्त्र नहीं जुटाए। परिणाम यह हुआ कि जो हमसे धन और विद्या में कम थे अपनी उद्दंडता से हमारे घर पर चढ़ आए, हमारा सर्वस्व हरण करके छलांग मारकर कूदते हुए चल दिए। ज़रूरत थी कि जहां हम ज्ञान और धन संचय करने के लिये अहर्निशि परिश्रम करते थे, वहां उन पदार्थों की रक्षा के लिये भी समुचित उपाय करते। लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। यही कारण था कि जहां हमारा अशिक्षित और असभ्य पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान

चैन की बंसी बजाते हुए न केवल आत्मरक्षा करता रहा बल्कि कभी कभी हमारे घर भी लूट पाट करता रहा, संसार में किसी को उसका अनभल करने का साहस नहीं हुआ। प्रतिकूल इसके भारत ने अपनी सर्वोत्तम सभ्यता के कारण जब जिसको आते देखा वह उसको आगे बढ़कर हाथ मिलाकर लाया, उसको अपने घर में आदर से स्थान दिया, अपना वस्त्र उसको पहनाया, अपना पेट काटकर उसको खाने को दिया, उसको अपने सगे भाइयों से बढ़कर मानता रहा। परिणाम यह हुआ कि जब हम सो गए, मज़े में सो भी नहीं पाए थे कि हमारे मिहरबान मिहमानों ने हम पर हमला किया, हमको बांधकर ज़मीन में ढुलका दिया, हमारा सर्वस्व छीन लिया। परिणाम यह हुआ कि हम भूखों मरने लगे, भूख के मारे धर्म कर्म की भी चिंता जाती रही। भाई भाई परस्पर लड़ने लगे, हमारा सोने का भारत जलकर स्वाहा हो गया। स्वाहा हो गया एक बार नहीं अनेक बार। हमारी ऐसी दशा हुई थी जब चंगेज़खां आया था, जब तैमूर का उपद्रव हुआ था, अब की बार उनसे बढ़कर हमारी दुर्दशा हुई जब नादिरशाह की चढ़ाई हुई थी। उस दिन का स्मरण करके हृदय काँप उठता है, हम दहल जाते हैं, अब भी जब हम किसी घोर अन्याय का नाम सुनते हैं तब उस को नादिरशाही कह कर पुकारते हैं। काबुल लेकर सरहद की पहाड़ी पारकर नादिरशाह पंजाब में आया। सिंध नदी

को नाव के पुल से पारकर वह आगे बढ़ा। लाहौर के सूबेदार ने बरायनाम मुक़ाबिला किया। इसके सिवाय किसी-ने नादिरशाह का सामना नहीं किया। बढ़ते बढ़ते उसने जमुना को पार किया और वह दिल्ली से ५० कोस की दूरी पर आ पहुँचा। उसके आमद की ख़बर सुनकर मुहम्मदशाह घबरा गया। कहां उस रँगीले बादशाह का नाच मुजरा और कहां नादिर की बहादुर सेना!

बड़ी मुश्किल से एक शाही सेना तैयार करके भेजी गई। बादशाह आसफ़जाह को साथ लेकर करनाल पहुँचा और वहां जाकर उसने एक मज़बूत क़िले में निवास किया। अवध का सूबेदार सादतख़ां भी मदद करने के लिये पहुँच गया। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। कहते हैं कि आसफ़जाह फूट गया और इसीलिये उसने लड़ाई में बिल्कुल मुक़ाबिला नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि शाही पल्टन बरबाद हो गई, सिपहसालार ख़ानी दुर्रानी मारा गया। सादतख़ां क़ैद कर लिया गया। मुहम्मदशाह ने घबराकर सुलह का पैग़ाम भेजा। आसफ़जाह शाही एल्ची बनाकर नादिरशाह के पास भेजा गया। नादिरशाह बड़ी ख़ातिरदारी से उसके साथ पेश आया। मुहम्मदशाह और नादिरशाह की भेंट हुई। दोनों ने एक ही महल में निवास किया। नादिरशाह की सेना नगर में फैल गई। यह होते हुए भी उसने आज्ञा दे दी थी कि किसी तरह की लूट पाट न

की जाय । इसके लिये उसने पहरे भी बैठा दिए थे।

यह होते हुए भी दिल्ली की प्रजा नादिरशाह को पसंद नहीं करती थी । वह उससे डरती थी, लेकिन उससे प्रेम नहीं करती थी । प्रेम कर भी कैसे सकती थी ? जिसने निष्कारण हमारे देश और घर पर हमला किया और हमारी निर्बलता से लाभ उठाकर हमारे ऊपर अपना अधिकार जमाया, उसके परतंत्र होकर, दीन और दुर्बल होते हुए भी हिंदुस्तानी उसको आदर और प्रेम की दृष्टि से कैसे देख सकते थे ?

दूसरे दिन शहर में ख़बर फैल गई कि नादिरशाह मर गया । हिंदुस्तान की भेड़ियाधसान मशहूर है । किसीने न जांच की और न कुछ सोचा विचारा । चांडूखाने की ख़बर घर घर फैल गई । हिंदुस्तानी एक दम भड़क उठे । उन्होंने नादिरशाह के सिपाहियों पर जहां वे मिले हमला कर दिया । बहुत से सिपाही मारे गए । किसी शाही अफ़सर ने उनके बचाने की कोशिश नहीं की । बहुतों ने तो यहां तक नीचता की कि पहरेवाले सिपाहियों को क़त्ल करवा दिया ।

नादिरशाह ने पहले दंगे को दबाने की कोशिश की, लेकिन कामयाबी नहीं हुई । रात भर झगड़ा बदस्तूर जारी रहा, बल्कि और बढ़ता ही गया । प्रातःकाल घोड़े पर चढ़कर वह बाहर निकला । उसने सोचा कि उसको देखकर लोग

शांत हो जायँगे । निकलते ही उसने सड़कों पर अपने सिपाहियों की लाशें देखीं । उसके सब्र की तारीफ़ है कि उसने इतने पर भी कुछ नहीं किया । बड़ी भारी ग़लती यह हुई कि मकानों पर से लोगों ने उस पर पत्थर फेंके ।

किसीने नादिरशाह को निशाना बनाकर गोली मारी । नादिर तो बच गया लेकिन उसके बग़ल में उसका एक सरदार उसके देखते मारा गया । अब अधिक सहन करना मर्द के लिये असंभव था । नादिरशाह ने क़त्लआम का हुक्म दिया । प्रातःकाल से हत्याकांड का आरंभ हुआ और बड़ी देर तक चलता रहा । मालूम नहीं कितने और कैसे कैसे मनुष्यों का वध हुआ । लूट पाट की कोई हद नहीं। शहर में आग लगा दी गई । रक्त की धारा बहने लगी, सत्यानाश का समुद्र उमड़ आया । हिंदुस्तानियों की मूर्खता का यह उचित दंड था । इनकी पहली मूर्खता और कादरता तो यह थी कि एक मन और एक शरीर होकर इन्होंने अपने देश के शत्रु का सामना नहीं किया, जननी जन्मभूमि की उसके उपद्रवों से रक्षा नहीं थी, उनकी उससे भी बढ़कर मूर्खता यह थी कि उन्होंने भूखे शेर नादिरशाह को बैठे बिठाए चिढ़ा दिया । अगर ऐसा न हुआ होता तो शायद नादिरशाह केवल धन लेकर हिंदुस्तान से चला गया होता ।

अंत में मुहम्मदशाह और उसके वज़ीर ने हाथ जोड़कर नादिरशाह को शांत किया । उसने क़त्लआम बंद होने का

हुक्म दिया। अपनी सेना पर उसका कितना बड़ा प्रभाव था इसका पता इस बात से चल सकता है कि उसका हुक्म होते ही जो जहां था वह वहीं रुक गया। अगर तलवार किसी की गर्दन पर पहुँची थी तो वहीं रुक गई। लेकिन दिल्ली निवासियों के अभाग्य की इतिश्री यहीं नहीं हुई। अभी तक तो मार काट की बात थी, अब लेन देन का विषय आया। यह काम पहले तो सादतखां के सिपुर्द था। लेकिन वह दिल्ली पहुँचते पहुँचते मर गया। उसके मरने पर यह काम सरबुलंदखां और एक ईरानी के सिपुर्द हुआ। एक तो ये दोनों भलेमानुस खुद ही रिआया के सताने में पक्के थे, तिस पर नादिरशाह की ताकीद और सख़्ती। बड़ी ज़्यादती से धन खींचा जाने लगा। लोग त्राहि त्राहि करने लगे। लेकिन उनके दुःख का देखनेवाला कौन था, उनके दर्द का दूर करनेवाला कौन था?

सबसे पहले शाही ख़ज़ाने और ज़ेवरात पर क़ब्ज़ा किया गया। तख़्त ताऊस पर भी अधिकार जमाया गया। उसके बाद बड़े बड़े महाजनों को अपना सर्वस्व दे देना पड़ा। उसके बाद बड़े अफ़सरों के नंबर आए, फिर औसत दरजे के आदमी और अंत में ग़रीब दुखिया भी पीसें गए। पहरे बैठा दिए गए। लोग बाहर जाने से रोक दिए गए। लोग दबाए जाते थे और दबाकर उनसे धन का पता पूछा जाता था। पता मिलने पर उनका सब कुछ ले लिया जाता था। रुपए

वसूल करने के लिये हर तरह के अत्याचार किए जाते थे। शायद ही कोई भला आदमी बचा हो जिस पर मार न पड़ी हो। बहुत से लोगों ने अत्याचारों से पीड़ित होकर अपने प्राण दिए, बहुतों ने आत्महत्या कर ली। लोगों को खाना और सोना हराम हो गया था। घर घर से रोने और कराहने की आवाज़ आती थी। एक एक करके लोग सताए और क़त्ल किए जाते थे। इसके अलावा सूबेदारों पर टैक्स लगाए गए। जिस तरह से रुपया वसूल किया जा सकता था वसूल किया गया।

चलते वक़्त नादिरशाह ने मुहम्मदशाह से सुलहनामा कर लिया। उसने अपने लड़के का मुहम्मदशाह की लड़की से ब्याह किया। तख़्त पर बैठाकर उसने अपने हाथ से मुहम्मदशाह को आभूषण पहनाए। यह जले पर नमक छिड़कना था। लेकिन बे-शरम मुहम्मदशाह को इसका क्या पता था? उसकी जान बच गई वह इसी को ख़ैरियत समझता था।

अंत में ५८ दिन के बाद नादिरशाह हिंदुस्तान से विदा हुआ। कई करोड़ रुपए, कई करोड़ के सोने चांदी के बर्तन और गहने वह अपने साथ ले गया। हाथी, घोड़े और ऊंट भी साथ में गए। कई सौ कारीगर भी हिंदुस्तान से ईरान भेजे गए।

नादिरशाह के चले जाने पर बहुत दिन तक दिल्ली मृतकावस्था की शांति भोगती रही। नादिरशाह के जाने पर लोगों

ने जब अपने नुक़सान का अंदाज़ा लगाया तो होश उड़ गए। और सब बातें उन्होंने सोची होंगी लेकिन इसका विचार नहीं किया होगा कि क्यों कई कोटि भारतवासी निर्बल पशुओं की तरह इस भांति काटे गए, अनाथों की तरह इस तरह सताए गए, निर्बलों की भांति इस तरह लूटे गए। क्या भारतवासियों के भी हाथ पैर थे? क्या उनके शरीर में भी प्राण थे? क्या उन्होंने भी माता का दुग्ध पान किया था? निस्संदेह सब कुछ पूर्ववत् था। कमी थी केवल संगठन की, कमी थी पारस्परिक सहानुभूति की। बोलना हमको आता था लेकिन एक स्वर से नहीं, लड़ना हमको आता था लेकिन मिलकर नहीं। परिणाम यह हुआ कि हम एक एक करके बारी बारी सताए गए, लूटे गए और मारे गए।'

नादिरशाह के चले जाने के बाद बड़ी देर में बादशाह और दरबारियों की नींद खुली। आँख उठाकर देखा तो सब तरफ़ बरबादी ही बरबादी नज़र आती थी। पल्टन नहीं के बराबर थी और ख़ज़ाना ख़ाली था। मरहठे दक्खिन में बदस्तूर अपना बल जमाए बैठे थे और लूट पाट किया करते थे। सिर्फ़ उत्तरीय भारत बचा था जिसको नादिरशाह ने ऐसा बरबाद किया जैसा मरहठे भी न कर सकते थे। तिस पर भी आपस की फूट ज़ोरों पर थी, झगड़े की जड़ तूरानी लोग थे। उनमें ख़ास लोग थे कमारुद्दीन और आसफ़जाह। इन दोनों में

बड़ी दोस्ती थी। ब्याह संबंध ने इनका प्रेम बंधन और भी पक्का कर दिया था। बादशाह और दूसरे लोग तूरानियों के ख़िलाफ़ थे। ऐसे वक़्त में मरहठे दम की दम में दिल्ली की सल्तनत ले सकते थे। लेकिन मुग़लों के भाग्य से मरहठों में फूट ने घर किया था। भोसला और गैकुआड़ भीतर ही भीतर बाजीराव की बुराई करना चाहते थे।

बाजीराव ने भोसला को करनाटक की लड़ाई में भेज दिया और खुद उसने आसफ़जाह के लड़के नासिरजंग पर बुरहानपुर के मुक़ाम पर हमला कर दिया। बाजीराव ने नासिर की सेना को घेर लिया। लेकिन नासिर ने बड़ी वीरता दिखाई। मरहठा सेना को छिन्न भिन्न करके वह अहमदनगर पहुँचा। यह दशा देखकर बाजीराव ने सुलह कर ली।

पता नहीं चलता था कि अब यह महाराष्ट्र नरसिंह क्या करेगा, किस हिरण्यकशिपु का विदारण करके प्रह्लाद की तरह यातना भोगती हुई आर्य जाति का उद्धार करेगा? लेकिन तब तक मौत का हुक्म आ गया। महाराज बाजीराव ने असमय और कुसमय स्वर्ग का रास्ता लिया।

बाजीराव के तीन लड़के थे। सबसे बड़े थे बालाजी बाजीराव। दूसरे लड़के का नाम था रघुनाथराव या रघोवा। तीसरे का नाम था शमशेरबहादुर। बालाजी बाजीराव अपने बाप की जगह पर पेशवा हुआ। रघोबा का नाम आप आगे चलकर पढ़ेंगे। इस निंदनीय व्यक्ति के कलुषित

नाम के उच्चारण से हृदय दहलता है, शरीर काँप उठता है। मालूम होता है कि एक बड़ी ही सुरम्य वाटिका में अनेक प्रकार के सुगंधित फूल फूले हुए हैं। कहीं हरित पत्रावली हृदय को शीतल करती है। पक्षी कलगान कर रहे हैं, शीतल मंद और सुगंध वायु के झोंके सब ताप और श्रम दूर कर रहे हैं। तब तक अचानक एक बनैला सूअर वाटिका के बँगले से निकलकर आता है। इस प्रमोदागार से सूअर कैसे निकला! लोग आश्चर्य करने लगे। विश्वास नहीं होता था। सोचा गया कि शायद यह इंद्रजाल का कौतुक मात्र हो। जब तक लोग विचार करें करें, वह महाराक्षस पशु एक एक करके फूलों को तोड़ने लगा, माधवी लतिकाओं को अपने भयानक दांतों में समेटने लगा। लोग जो सामने गए मारे गए। जो सुरम्य उपवन था वह भयंकर वन होगया। उस नर-सूकर का नाम था रघुनाथराव या रघोबा। अच्छा होता कि उस नर-पिशाच का जन्म ही न हुआ होता। मरहठा जाति में फूट की अग्नि जलानेवाला, वैर का बीज बोनेवाला, सत्यानाश का पौधा रोपनेवाला यही था। शमशेरजंग मुसलमानिन के पेट से पैदा हुआ था।

बाजीराव के मरने पर बालाजी बाजीराव के सामने बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ थीं। लेकिन हर बात में पिता के बराबर न होने पर भी उसने धैर्य से सब बात का सामना किया। एक साल के घरेलू झगड़े के बाद नए पेशवा ने

उत्तरीय भारत की ओर दृष्टि घुमाई। इस काम में रघोबा ने पहले से विघ्न उठाया था। लेकिन अंत में पेशवा की जीत हुई।

इसके बाद रघोबा ने बंगाल पर चढ़ाई की। अलीवर्दीखां बंगाल का सूबेदार था। उसने बादशाह से मदद मांगी। बादशाह ने पेशवा से सहायता चाही और इसके बदले में मालवा का सूबा देने को कहा। पेशवा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि शत्रु से बदला लेने का इतना अच्छा मौक़ा फिर नहीं मिलेगा। अपनी सेना लेकर वह बंगाल पर चढ़ गया। रघोबा पराजित हुआ। पेशवा मालवा वापस आया और कुछ दिन के बाद सतारा की ओर चला गया।

इधर मरहठों की यह दशा थी, उधर आसफ़जाह का लड़का नासिरजंग बाप से बाग़ी हो गया। उसके कुछ ही दिन बाद ७७ साल की अवस्था में आसफ़जाह की मृत्यु हुई। उसके मरने के बाद लड़कों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उस झगड़े का और किसी सूबे पर असर नहीं पड़ा। उसके कुछ ही दिन के बाद साहू राजा का देहांत हो गया जिसके कारण मरहठों में बहुत दिन तक झगड़ा चलता रहा।

इसी बीच में एक दूसरे लुटेरे की नज़र हिंदुस्तान पर पड़ी। उस धावा करनेवाले का नाम था अहमदशाह अब्दाली। वह अब्दाली जाति का एक बहादुर आदमी था। थोड़ी ही अवस्था में उसने बड़ा नाम पैदा किया। वह नादिरशाह

की सेना में था । नादिरशाह ने उसके गुण का आदर किया और अपनी पल्टन में उसको बहुत ऊँचा दरजा दिया। नादिरशाह के मरने पर अहमद ने अपने स्वामी के गुणों का अनुकरण किया। उसने सोचा कि नादिर की तरह वह भी क्यों संसार विजय न करे। इस बात को ध्यान में रख कर उसने उद्योग करना आरंभ किया। काफ़ी तैयारी करके और छोटी मोटी कामयाबी हासिल करके उसने हिंदुस्तान पर हमला किया।

सिंध नदी पार करने के बाद शाही प्लटन ने उसका मुक़ाबिला किया। मुहम्मदशाह के लड़के शाहज़ादा अहमद और कमारुद्दीनख़ां वज़ीर उससे लड़ने के लिये भेजे गए थे। अहमद के पास सिर्फ़ १२ हज़ार सेना थी लेकिन उसने बहादुरी से क़ाम लिया। उसने सरहिंद पर क़ब्ज़ा किया। वहां जाने पर उसको बहुत से बंदूक़ मिल गए जिनसे उसका बल बढ़ गया। मुग़ल वज़ीर मारा गया लेकिन मुग़ल सेना सामना करने के लिये अड़ी हुई थी। तब तक मुहम्मदशाह बीमार पड़ा और शाहज़ादा दिल्ली वापस चला आया। अहमदशाह पंजाब में रुक गया। कुछ दिन के बाद दिल्ली के नए सूबेदार ने अहमदशाह को कर देना स्वीकार किया।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

अहमदशाह ।

१७४८-१७५४ ई०

सरहिंद की लड़ाई के १ माह बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई और उसकी जगह पर उसका लड़का अहमदशाह तख़्त पर बैठा। नए बादशाह के दिल में बड़ी फ़िक्र थी, वह अहमदशाह दुर्रानी के डर के मारे परेशान रहता था। उसको डर था कि दुर्रानी मालूम नहीं किस वक़्त हमला कर बैठे।

उसने सोचा कि और रियासतों से इस तरह के सुलहनामे किए जायँ कि सब मिलकर अहमदशाह का मुक़ाबिला कर सकें। उसने आसफ़जाह को वज़ीर बनाना चाहा लेकिन उसने इनकार किया। थोड़े ही दिन बाद आसफ़जाह का देहांत हो गया। इसके बाद उसने आसफ़जाह के लड़के नासिरजंग से सहायता मांगी। सादतख़ां का लड़का सफ़दर-जंग वज़ीर बनाया गया। इसी वक़्त रुहेलों ने भी उपद्रव किया। उनके दबाने के लिये सेना भेजी गई। लेकिन रुहेलों ने इनके छक्के छुड़ा दिए।

विवश होकर सफ़दरजंग ने मरहठों से मदद मांगी। जाट राजा सूरजमल से भी उसको सहायता मिली। इन लोगों की मदद से उसने रुहेलों को परास्त किया। रुहेला इलाक़ों में मरहठों ने ख़ूब लूट पाट मचाई। विवश होकर

रुहेलों ने सफ़दरजंग से सुलह की और मामूली जागीरदार होकर वे लोग दिन काटने लगे।

इस लड़ाई से दिल्ली के बादशाह को जो थोड़ा सा फ़ायदा हुआ था उसकी कसर भी निकल गई। जोधपुर के राज्य के लिये दो पट्टीदार लड़ रहे थे। अजमेर के सूबेदार ने दस्तन-दाज़ी की और ज़क उठाई।

इधर मुग़ल राज्य दिन दिन निर्बल होता जाता था, उधर समाचार आया कि अहमदशाह दुर्रानी ने फिर पंजाब पर हमला किया। बाद में पता चला कि उसने पंजाब पर पूरा अधिकार जमा लिया। एक दूत भेजकर उसने दिल्ली के बादशाह को सूबा हमेशा के लिये छोड़ देने के लिये कहा। जब तक वज़ीर मरहठों के साथ रुहेलखंड से वापस आवे, दुर्रानी के हुक्म की तामील हो गई थी।

वज़ीर की ग़ैरहाज़िरी में जाविद नाम के ग़ुलाम का ज़ोर दरबार में बहुत बढ़ गया था। सफ़दरजंग यह कब देख सकता था? उसने जाविद को एक दावत में बुलाया और वहीं उसका काम तमाम कर दिया। इससे बादशाह बहुत नाराज़ हुआ। उसने सफ़दरजंग से बदला लेने के लिये खुद उसके भतीजे को खड़ा कर दिया। चचा और भतीजे में ६ महीने की बड़ी लंबी लड़ाई हुई। आजिज़ आकर भतीजे के ख़िलाफ़ बादशाह खुद फ़ौज लेकर निकल पड़ा लेकिन पकड़ा गया। वह न सिर्फ़ तख़्त से उतारा गया बल्कि आँख

का अंधा भी कर दिया गया। साथ साथ उसकी माता की आँखें भी निकाली गईं। मुग़लख़ानदान का एक दूसरा शाहज़ादा आलमगीरसानी के नाम से तख़्त पर बैठा।

आलमगीर दूसरा।

१७५४–१७७१ ई०

इस बलवे के थोड़े ही दिन बाद सफ़दरजंग मर गया। उसका भतीजा ग़ाज़िउद्दीन तख़्त पर बैठा। उसके ज़ुल्म के मारे उसके बहुत से सिपाही बाग़ी हो गए। उन लोगों ने आम सड़क पर उसको घसीटा। मौत को सामने देखकर भी ग़ाज़िउद्दीन ने हिम्मत नहीं छोड़ी। वह बराबर बाग़ियों को धमकाता रहा। अंत में कुछ अफ़सरों ने आकर उसको बचाया। छुटते ही उसने क़त्ल का हुक्म दिया। सिपाही एक एक करके काट डाले गए। उनके घोड़े औरों को दे दिए गए और असबाब लूट लिया गया।

जब वज़ीर बाग़ियों के हाथ में था, बादशाह ने उसके क़ैद करने का अच्छा मौक़ा सोचा। ऊपर से उसने यह दिखाया कि वह वज़ीर का प्राण बचाना चाहता था। इस हीले से उसने बाग़ियों को रिशवत देकर वज़ीर को अपने

क़ब्ज़े में करना चाहा। नतीजा यह हुआ कि वज़ीर और ज़्यादा चौकन्ना हो गया।

यहां से छुट्टी पाकर वज़ीर पंजाब की ओर बढ़ा। अहमद-शाह दुर्रानी की इजाज़त से मीर मन्नू पंजाब की सूबेदारी कर रहा था। उसके मर जाने पर उसकी बेवा अपने बच्चे को लेकर वहां हुकूमत कर रही थी। वज़ीर साहब ने जोड़ तोड़ लगाकर उस बेवा की लड़की से अपनी शादी ठीक की। बारात धूमधाम से गई। बारात तो महज़ हीला था। असल मतलब तो मुल्क दख़ल करना था। मक्कारी करके उसने उस शरीफ़ बेवा को गिरिफ़्तार कर लिया। उस वक़्त उसकी क्या हालत हुई होगी इसको आप ख़ुद सोच सकते हैं।

उस वक़्त ईश्वर को छोड़कर कौन उसका मददगार था। लाचार और दुखी होकर उसने शाप दिया कि इस धोखे का नतीजा हिंदुस्तान को भुगतना पड़ेगा।

विधवा का वचन पूरा हुआ। अहमदशाह दुर्रानी को ख़बर मालूम हुई। उसने बदला लेने के लिये या यह कहिए कि बदले के हीले से धन कमाने के लिये हिंदुस्तान पर चढ़ाई की। ग़ाज़िउद्दीन जहां मौक़े पर अकड़ जाता था वहां वक़्त पड़ने पर ख़ुशामद भी कर लेता था। दुर्रानी बढ़ते बढ़ते दिल्ली से बीस मील के फ़ासिले पर पहुँच गया। ग़ाज़िउद्दीन ने बुढ़िया को ख़ुश कर लिया था। उसकी सहायता से वह

दुर्रानी के पास पहुँचा और क्षमाप्रार्थी हुआ। वज़ीर का जान तो छोड़ दी गई लेकिन रुपए के लिये तक़ाज़ा हुआ। आप कहेंगे तक़ाज़ा कैसा ? क्या अहमदशाह दुर्रानी के बाप ने हिंदुस्तानी प्रजा को तक़ावी दे रखी थी जिसको वसूल करने वह आया था ?

ऐसा तो कभी नहीं हुआ। इस दयावान् देश ने अपना पेट काट काटकर औरों को खिलाया, अपने बच्चों को भूखा रखा। इसको खिलानेवाला दुनिया में कौन देश पैदा हुआ ? सच पूछिए तो हमारी सज्जनता ने हमारा नाश किया। न तो हमने किसी का कुछ खाया था और न कभी किसी का कुछ बिगाड़ा था। हम सोचते रहे कि न हम किसी को सतावेंगे और न कोई हमको कष्ट देगा। हमने नहीं सोचा कि महाभारत के समय से ही संसार की गति बदल गई। दुनिया का नियम हो गया जिसकी लाठी उसकी भैंस। लोग हमको इसलिये सताने लगे कि हममें उनके सताने की शक्ति नहीं थी। लोग हमारे मुंह में हाथ डालकर हमारा ग्रास इसलिये निकालते रहे हैं कि हमारे हाथ में इतना बल नहीं था कि हम उनके हाथ की उँगलियां मूली की तरह टुकड़े टुकड़े कर दें। हमारी देवियों की तरफ़ वे दुष्ट इसलिये देखते रहे कि हम उनकी आँखों को गरम लोहे से खींचकर बाहर न निकाल सके। यही कारण था कि चंगेज़, तैमूर और नादिर ने भारत को अपनी बपौती जागीर समझकर लूटा,

हमको अपनी रिआया समझकर सताया, उन असभ्यों में प्रजापालन का भाव नहीं था इसलिये हम क़त्ल भी किए गए। अहमदशाह इन बातों में किसीसे कम नहीं रहना चाहता था। इसलिये जब मौक़ा हाथ लगा वह इस अभागे देश पर चढ़ आया था।

अब की उसका तीसरा हमला था। दिल्ली की जो दुर्दशा होने को थी हुई। नादिरशाह के अत्याचारों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया। दुर्रानी नादिरशाह के समान क्रूर नहीं था लेकिन सेना पर नादिरशाह के समान उसका अधिकार भी नहीं था। इसलिये सिपाहियों ने छूटकर लूट पाट करना आरंभ किया। जिसको चाहा मारा, जिसे चाहा काटा। कोई मना करनेवाला नहीं था, कोई रोकनेवाला नहीं था। इधर दिल्ली इस तरह तबाह की जा रही थी उधर ग़ाज़िउद्दीन दूसरे सूबों से धन उगाहने के लिये भेजा गया था। अहमदशाह का सबसे बड़ा अत्याचार और अन्याय मथुरा में हुआ। रात में किसी त्यौहार के समय हमला हुआ। निर्बल, निस्सहाय, और निरर्थक कृष्ण-भक्त घास की तरह काटे गए। देवमंदिर लूटे और तोड़े गए। इतिहासलेखकों ने इस कर्म के लिये दुर्रानी को खूब कोसा है। लेकिन इसमें लुटेरे से बढ़कर दोष था उन लोगों का जो हाथ पर हाथ रखकर सदा लुट जाने के लिये, पिट जाने के लिये, जौनपुरी मूली की तरह कट जाने के लिये तैयार रहते हैं।

ऐसे लोगों के लिये क्या कहा जाय ? ऐसे बेमतलब लोग जब तक ख़ैरियत से रहें तभी तक तअज्जुब है।

कहां योगिराज कर्मवीर वासुदेव द्वैपायन कृष्ण, कहां उनकी साहस भरी, उमंग भरी, वीरता और तेज भरी अमृतमयी कर्मयोग की शिक्षा, कहां स्वत्व के लिये भाई से भी लड़ने की सम्मति, कहां बात बात में पुरुषार्थ का उपदेश, कहां उस ज्योतिर्मय, पराक्रममय, ज्ञानमय, गौरवमय अच्युत के नाम की आड़ में स्वार्थ, लोलुपता, कादरता, और नपुंसकता का सग्रह ! आश्चर्य ! शोक ! धिक्कार !

मथुरा के बाद आगरे की आफ़त आई। लूट का माल लेकर चलते वक्त दुर्रानी ने मुग़ल कुल की एक कन्या से विवाह किया। साथ ही साथ उसके लड़के का ब्याह भी उसी ख़ानदान की एक शाहज़ादी से हुआ। अहमदशाह के चलते वक्त बादशाह ने हाथ जोड़कर आरज़ू की कि वह वज़ीर के हाथों में न छोड़ा जाय। उसकी रक्षा के लिये रुहेला सरदार नजीबुद्दौला सिपहसालार मुक़र्रर हुआ। दिल्ली ! महाराज युधिष्ठिर की नगरी ! वीर मुग़लों की राजधानी ! तुम्हारी यह दीनावस्था कि तुम्हारा शासक एक लुटेरे से अपनी प्राणरक्षा की भिक्षा करे।

ग़ाज़िउद्दीन कब यह बात बरदाश्त कर सकता था ? उसने बदला लेने के लिये मरहठों से मदद ली। थोड़े ही दिन के बाद ग़ाज़िउद्दीन की मौत हो गई। लेकिन मरहठों ने अपना

काम जारी रखा। उन्होंने दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया। पंजाब भी इनके हाथ आ गया। दुर्रानी लोग सिंध नदी पार करके यहां से चले गए।

पंजाब के बाद मरहठों ने अवध को हथियाना चाहा। यही नहीं उनका इरादा था कि समग्र उत्तरीय भारत पर अधिकार जमा लें। दक्षिण देश तो पहले ही से उनका था। इस तरह हिमालय से कन्याकुमारी तक उनका अधिकार जम जायगा, एक बार फिर हिंदू स्वतंत्रता का शंखनाद हो! लेकिन परमात्मा को यह स्वीकार नहीं था क्योंकि मरहठों में इतनी योग्यता नहीं थी।

यद्यपि मरहठे स्थायी रूप से भारतवर्ष के स्वामी न हो सके, तिस पर भी उस समय समग्र देश किसी न किसी प्रकार से उनके हाथ में था। अटक से कटक तक उनका प्रभुत्व छाया हुआ था। वे जो करते थे वही होता था, वे जो कहते थे वही किया जाता था, वे जैसी आज्ञा देते थे लोग उसीके अनुकूल बर्तते थे। उनकी आज्ञा भंग करके कोई कुशल से नहीं रह सकता था।

मरहठों के प्रभुत्व का समाचार सुनकर अहमदशाह दुर्रानी फ़ौज लेकर हिंदुस्तान वापस आया। उसके आने की ख़बर सुनकर मरहठे पंजाब छोड़कर चले गए। देखते देखते दुर्रानी ने अपनी सेना के साथ सहारनपुर के सामने जमुना पार की। ग़ाज़िउद्दीन ने देखा कि अब ख़ैरियत

नहीं है। उसने बादशाह के क़त्ल का हुक्म दिया। उस पापी के नीच नौकरों ने बादशाह को छुरे से क़त्ल करके जमुना के रेते में डाल दिया। बादशाह के कपड़े तक उतार लिए गए। जो एक समय दिल्ली के राजसिंहासन को विभूषित करता था मरने पर उसके शरीर पर वस्त्र तक नहीं। ग़ाज़िउद्दीन खुद जान लेकर भागा और जाटों की शरण में चला गया।

दुर्रानी के आगमन पर पेशवा ने यथाशक्ति खूब तैयारी की। मरहठा पैदल सेना बड़ी सजी हुई थी। उसमें कई योरोपियन सेनापति थे। मरहठा तोपख़ाना भी अब मुग़लों से किसी तरह ख़राब नहीं था। मुग़लों के ढंग के सामान भी उन्होंने तैयार कर लिए थे।

अहमदशाह का मुक़ाबिला करने के लिये दो मरहठा सेनाएं अलग अलग तैयार की गईं। लगभग तीस हज़ार के सिपाही थे। मरहठों की लूटपाट के कारण लोग उनसे ख़ुश नहीं थे, इसलिये दुर्रानी के आने का ठीक पता उनको नहीं मिल सका। अहमदशाह अचानक आ पहुँचा। पहले दाताजी सींधिया की सेना का मुक़ाबिला हुआ। दो तिहाई सिपाही मारे गए और सींधिया खुद लड़ाई में काम आया। दूसरी सेना माल्हरराव हुल्कर के अधिकार में अभी दूरी पर थी। सींधिया के पराजय का हाल सुनकर हुल्कर

चंबल के दक्खिन ओर भागा। लेकिन फ़तहयाब अफ़गान पहुँच गए। हुल्कर की सेना भी पराजित हुई।

दोनों सेनाओं के पराजय का समाचार दक्खिन में पहुँचा। मरहठों ने दुर्रानी का सामना करने की बड़ी ज़बर-दस्त तैयारी की। वीर मरहठों की सर्वोत्तम सेना इकट्ठी की गई। वे जैसे वीर थे उनको सेनापति भी वैसा ही बहादुर मिल गया था। पल्टन का कमांड दिया गया सदाशिवराव भाऊ को। मरहठा जाति ने अपने सर्वोत्तम पदार्थ भाऊ की सेवा में अर्पण किए। इसमें संदेह नहीं कि भाऊ बड़ा ही प्रबल वीर था। उसके समान पराक्रमी और साहसी के आधिपत्य में मरहठा सेना ने मालूम नहीं क्या कर दिया होता यदि भाऊ में अहंकार का भाव न होता। इसी दोष ने उसका सत्यानाश किया, मरहठा जाति का सर्वनाश करके हिंदूजाति का चौका लगाकर सोलहो आने अंटाढार किया।

पेशवा का लड़का विश्वासराव सहायता के लिये भेजा गया। मदद में बहुत सी राजपूत पल्टनें भी आई थीं। ३० हज़ार जाटों को लेकर सूरजमल भी सहायता के लिये आया था। सूरजमल ने एक बड़ी अच्छी नसीहत दी थी जिसके मानने से शर्तिया कामयाबी होती। उसने समझाया कि तोपख़ाने और बड़ी बड़ी बंदूक़ें जाट इलाक़े में छोड़ दी जायँ जहां क़िलों में उनकी रक्षा होगी। घोड़ों पर

दुश्मन का मुक़ाबिला किया जाय । दुर्रानी लोग कई महीने हिंदुस्तान में रह चुके हैं। अब वे जल्द अपने मुल्क वापस जायँगे। बहुत से मरहठा अफ़सरों ने भी राजा की बात का समर्थन किया। लेकिन "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"।

भाऊ ने किसी की बात न सुनी । वह अभिमान में चूर था। उसको ख़्याल था कि जब वह सीधे रास्ते से दुश्मन को दम की दम में शिकस्त दे सकता है तो दावँ पेंच से क्या फ़ायदा। सूरजमल की बड़ी मानहानि हुई। इसके पहले भी भाऊ ने राजा का कई बार अपमान किया था। वह सूरज-मल को साधारण ज़मींदार समझता था । वह कहा करता था कि राजनीति ऐसे लोगों के समझने की चीज़ नहीं है। बहुत से मरहठा सरदारों ने भी इसको बहुत बुरा माना।

जो हो सज धजकर और उचित तैयारी करके भाऊ ने दिल्ली का रास्ता लिया। थोड़ी सी दुर्रानी सेना राजधानी की रक्षा कर रही थी । एक तरफ़ की दीवार से मौक़ा पा-कर मरहठे ऊपर चढ़ गए । भाऊ ने इस जीत का बड़ा ही अनुचित व्यवहार किया।

उसने महलों को तोड़ा, मसजिद और मक़बरों को तोड़-कर वहां के जवाहिरात पर क़ब्ज़ा किया। दीवान आम की चांदी की चांदनी तोड़ डाली गई । जितने तख़्त और ज़ेव-रात मिले ले लिए गए। उसने चाहा कि विश्वासराव को हिंदुस्तान का शाहंशाह मशहूर करें । लेकिन लोगों ने सम-

झाया कि जब तक अहमदशाह हिंदुस्तान से चला न जाय ऐसा नहीं करना चाहिए। इन बे-वक़ूफ़ियों से तजरबेकार और समझदार सूरजमल को नफ़रत हो गई। वह बहुत घबराने भी लगा। विवश होकर सूरजमल ने गुप्त रीति से शुजाउद्दौला से संधि कर ली। इधर मरहठों से भी खुलकर उसने शत्रुता नहीं की। भाऊ को सूरजमल के चले जाने की कोई फ़िक्र नहीं थी। उसका प्रण था "निज भुज बल मैं बैर बेसाहा। देहौं उतर जो रिपु चढ़ि आवा।"

बरसात की वजह से अहमदशाह अनूपशहर में रुक गया। नजीब और रुहेलों ने उसकी सहायता करने को कहा। आशा थी कि शुजाउद्दौला भी मदद करेगा लेकिन इसका निश्चय नहीं हुआ था। स्वार्थ साधन के लिये अहमदशाह ने इस लड़ाई को "हिंदू मुसलमान युद्ध" का रूप दिया। ऐसा करने से उसको मुसलमानों से सहायता मिल गई। शुजाउद्दौला भी इस दीनी लड़ाई में काफ़िरों का साथ कैसे दे सकता था। लेकिन अहमदशाह से उसका पुश्तैनी बैर था। उसके बाप सफ़दरजंग से दुर्रानी की अदावत थी जिसको फ़र्माबरदार लड़के ने अभी तक नहीं भुलाया था। इन्हीं बातों का ख़्याल करके दुर्रानी ने शुजाउद्दौला को अपनी ओर करने की कोशिश में अनूपशहर का सफ़र किया। नजीबुद्दौला की युक्तियों से वह कामयाब रहा। शुजाउद्दौला दुर्रानी की तरफ़ हो गया।

मुसलमानी गिरोह में शरीक होकर मरहठों का भेद लेने के लिये शुजाउद्दौला ने उनसे ऊपरी दोस्ती क़ायम रखी। वह बराबर उनका भेद लिया करता था।

यह निपटारा हो जाने पर भी अहमदशाह बरसात की वजह से कुछ दिन तक रुका था। लेकिन बरसात ख़तम होते होते उसने दिल्ली की तरफ़ यात्रा की। उसी वक़्त उसको ख़बर मिली कि भाऊ ने कुंजपुरे पर हमला किया। भाऊ ने पानीपत में अपना मोरचा जमाया था। उसके साथ सत्तर हज़ार सवार थे, दो सौ तोपें थीं। मोरचों के अंदर तीन लाख से कम आदमी नहीं थे। दुर्रानी के साथ तिरपन हज़ार सवार और अड़तीस हज़ार पैदल सिपाही थे। लेकिन तोपें सिर्फ़ तीस थीं। उसने भी मोरचे जमाए थे।

दोनों ओर की सेनाएं एकत्र थीं। कभी कभी मुठभेड़ हो जाती थी लेकिन खुलकर लड़ाई नहीं होती थी। प्रत्येक दल एक दूसरे को देखकर भयभीत सा था, आक्रमण करने का साहस किसी को नहीं होता था। हिंदुस्तानी मुसलमानों ने उजलत दिखलाई और जल्द हमला करने के लिये कहा। लेकिन दुर्रानी ने उनकी एक नहीं सुनी। उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि लड़ाई के मामले में उनको बहुत कम तजरबा है। अहमदशाह ने मोरचों के आगे एक छोटा सा लाल ख़ीमा खड़ा कर रखा था। वह उसी में सुबह नमाज़ पढ़ने और शाम को खाना खाने के लिये आता था। दिन भर घोड़े पर

सवार होकर वह फ़ौज में घूमा करता था। हिंदुस्तानी रईसों को उसने निश्चित करके सोने के लिये कह दिया था। शुजाउद्दौला की मारफ़त भाऊ ने सुलह का संदेश भेजा। संधि हो गई होती लेकिन नजीबुद्दौला ने न होने दी। इधर मरहठों ने भाऊ को लड़ने के लिये दबाया। विवश होकर भाऊ ने अंतिम संदेश भेजा। लेकिन तबतक लड़ाई की तैयारी हो गई। मरहठों को तैयार देखकर साथियों ने रात ही में दुर्रानी को जगाया। अहमदशाह फ़ौज लेकर आगे बढ़ा। मुठभेड़ हो गई। मरहठों के गोले सनसनाने लगे। लेकिन गोले अफ़ग़ानों के सर से होकर निकल जाते थे उनको लगते नहीं थे। मरहठे "हरहर" की ध्वनि करते हुए आगे बढ़ते चले जाते थे।

जब तोपों से काम न चला, मरहठों के पुराने नमक-हलाल इबराहीमख़ां गार्दी ने आज्ञा लेकर संगीन की लड़ाई शुरू की। रुहेले परेशान हो गए और भाग चले। दुर्रानी का वज़ीर मरते मरते बचा। इसी बीच में अहमदशाह ताज़ी फ़ौज लेकर आ गया और उसने हल्ला बोल दिया। भाऊ और विश्वासराव बदस्तूर लड़ते रहे। लेकिन मालूम नहीं क्यों मरहठा सेना के पैर उखड़ गए। वह अचानक भाग चली। अफ़ग़ानों ने हर तरफ़ पंद्रह बीस मील तक पीछा किया। मरहठे जहां मिले काटे गए। कुल मिलाकर २ लाख के लग-भग आदमी कटे। प्रायः सभी मरहठा अफ़सरों ने चोट खाई।

कहते हैं माल्हरराव हुल्कर पहले ही भाग गया था। महाजी सींधिया लँगड़ा हो गया था। नाना फरनवीस ने बड़ी मुश्किल से भागकर जान बचाई। भाऊ और विश्वास मारे गए।

इतने वीर और पराक्रमी सिपाहियों की इतनी ज़बरदस्त हार इसके पहले नहीं सुनी गई थी। हिमालय पर्वत के उच्च शिखर से गिरकर मरहठा जाति रसातल को चली गई। जिस तरह महाभारत ने हिंदूजाति की वीरता को सदा के लिये निर्मूल कर दिया, प्रतापी भीष्म के वंश में शुकदेव से अठारह पर्व भागवत सुननेवाले परीक्षित मात्र रह गए, अद्वितीय धनुर्धर अर्जुन के उठाए गांडीव नहीं उठता था, उसी तरह पानीपत के तृतीय युद्ध ने मरहठा जाति का सर्व संहार कर दिया। समग्र महाराष्ट्र देश में आर्तनाद फैल गया, जहां देखिए वहीं निराशा और आशंका फैल गई। पेशवा के हृदय पर जो आघात लगा वह उसके प्राण के साथ गया।

खैरियत हुई कि अहमदशाह ने लड़ाई के थोड़े ही दिन बाद अपने देश का रास्ता लिया। असल बात तो यह है कि वह भी परेशान हो गया था। उसके चले जाने के बाद उसके हिंदुस्तानी मुसलमान मददगार तितर बितर हो गए। उसके चले जाने के बाद शुजाउद्दौला ने आलमगीर सानी के लड़के अलीगुहर को बंगाल से बुलाकर शाहआलम के नाम से तख़्त पर बैठाया।

बारहवाँ अध्याय ।

शाहआलम सानी ।

सन् १७७१–१८०२ ई०

यह दिल्ली का आख़िरी मुसलमान बादशाह था। इसने आठ दस वर्ष का समय इलाहाबाद की ओर व्यतीत किया। नजीबुद्दौला नायब की हैसियत से दिल्ली में हुकूमत करता रहा। नजीबुद्दौला के मरने के बाद मरहठों की सहायता से बादशाह दिल्ली पहुँचा। कुछ दिन सुख से कटे लेकिन निर्बल के हाथ में शासन की बागडोर कब तक और कैसे रह सकती है? बिजली की तारों में उतना बल नहीं है जितनी सल्तनत की डोरी में है। उसको पकड़ने के लिये बड़ा बल चाहिए, बड़ी चतुरता चाहिए।

नजीबुद्दौला के लड़के ग़ुलाम क़ादिर ने रुहेलों को लेकर शाही क़िले पर हमला किया। उसने क़िले पर अधिकार जमाकर बादशाह को क़ैद कर लिया। उसने बादशाह को ज़मीन में पटककर कटार से आंखें निकलवा लीं। बेगमों के कपड़े उतरवा लिए गए।

महाजी सींधिया ने ख़बर पाकर क़ादिर को नीचता का दंड देने का प्रण किया। दिल्ली पहुँचकर उसने बड़ी निर्दयता से क़ादिर के प्राण लिए। अंधा बादशाह सुख में रखा

गया। सींधिया स्वयं उसके प्रतिनिधि पेशवा के नाम से शासन करने लगा।

इधर अँगरेज़ों का आगमन हो गया था। धीरे धीरे इनका प्रताप बढ़ता गया। बुद्धि से इन्होंने बड़े बड़े बलवान् राजाओं को नीचा दिखाया। सन् १७५७ ई० में प्लासी युद्ध की सफलता ने इनका पैर बंगाल में जमा दिया था। सन् १७७५ ई० में शुजाउद्दौला के मरने पर अवध में भी इन लोगों का दबदबा जम गया। इधर रघोवा की विभीषणी नीति ने पनपती हुई मरहठा जाति को और भी रसातल भेजने का बीड़ा उठाया। मैसूर में हैदरअली का बल बढ़ा था। उसके लड़के टीपू ने बाप का इलाक़ा अपने क़ब्ज़े में रखा। लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंज़ूर था। वह चाहता था कि जिस तरह नदी नालों का जल सिमटकर समुद्र में जाता है वैसे ही सब छोटे मोटे भारतीय राजे अँगरेज़ जाति के अधीन हो जायँ। अस्तु सन् १७६६ ई० में अँगरेज़ों से लड़कर टीपू पराजित हुआ और मारा गया। ६२६ तोपें, सामान सहित १ लाख बंदूक़ें, १ करोड़ से अधिक रुपए और बहुत से जवाहिरात अँगरेज़ों के हाथ लगे।

उपर्युक्त घटनाओं से अँगरेज़ों का बल इतना बढ़ गया था कि उन्होंने दिल्ली पर चढ़ाई करके मरहठों की शक्ति का युक्ति से सामना करके शाहआलम को अपने हाथों में किया। सन् १८०३ ई० से बादशाह अँगरेज़ों की पेंशन भोगता रहा।

इस तरह प्रतापी मुहम्मद क़ासिम का रोपा हुआ, ग़जनी और ग़ोर की निगरानी में पला, ग़ुलाम, ख़िल्जी, तुग़लक़, सैयद और लोदी के हाथों से रखाया हुआ, अकबर का सींचा हुआ मुसलमान राज्य औरंगज़ेब की अदूरदर्शिता के ताप से झुलसकर शाहआलमसानी के समय में असमय अंतरिक्ष की गोद में विलीन हो गया।

वैसे तो छोटी मोटी मुसलमानी रियासतें बहुत दिनों तक चलती रहीं और ब्रिटिश राज्य की छत्र छाया में अब भी हैं। लेकिन स्वतंत्र भारतीय मुसलमानी राज्य का सूर्य सन् १८०३ ई० में अस्त हो गया और अस्त हो गया सदा के लिये।

अँगरेज़ों को बाद में भी बहुत सी लड़ाइयां लड़नी पड़ीं लेकिन वे लड़ाइयां औरों से हुईं। तीसरे पानीपत के युद्ध में मरहठे निर्बल हो गए थे, एक तरह से उनका सर्वनाश हो गया था। लेकिन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ महादजीराव सींधिया ने अपने यत्न से मरहठा भ्रातृमंडल (Maharatha Confederacy) स्थापित किया था। उसी संयुक्त शक्ति के साथ अँगरेज़ों का बहुत दिन तक मुक़ाबिला रहा। अंत में वे सब पराजित हुए और अँगरेज़ी सरकार के मित्र बन गए।

सन् १८५७ ई० में एक बहुत ही शोचनीया दुर्घटना हुई। अनेक कारणों से हिंदुस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह किया। अशिक्षित प्रजा ने बिना सोचे समझे कुतूहल वश उनका साथ दिया। कुछ दिन तक देश भर में अशांति फैल गई

थी। जिसने जिसको पाया लूटा। जो मिल गया मारा काटा गया। यह उपद्रव न तो धार्मिक था और न तो राजनैतिक। अगर ऐसा भाव होता तो या तो हिंदू मिलकर मुसलमानों पर छापा डालते या मुसलमान "अली अली" करके हमारे मंदिर और मकानों पर चढ़ आते। अगर बलवाइयों का राजनैतिक उद्देश्य रहा होता तो हिंदू मुसलमान दोनों मिलकर अँगरेज़ और अँगरेज़ी सरकार के पीछे पड़ते। लेकिन बात यह नहीं थी। सभी देशी रजवाड़ों ने अँगरेज़ों की सहायता की। सिक्खों ने इनकी मदद के लिये जी जान लड़ा दी। एक मात्र स्वतंत्र हिंदू राज्य नैपाल ने बड़ी मदद की। इनके अतिरिक्त साधारण लोगों ने भी अँगरेज़ों को शरण देकर अपनी सज्जनता और दूरदर्शिता का परिचय दिया। उनकी राजभक्ति का फल आज भी उनके वंशज जागीर रूप में भोग रहे हैं।

इससे साफ़ मालूम होता है कि हिंदुस्तानी प्रजा ने अँगरेज़ी राज्य को प्रसन्नता से स्वीकार किया है। अँगरेज़ों ने भारत को लड़कर नहीं लिया और न उन्होंने हमारा रक्त बहाया। इसीलिये हम समझते हैं कि वे हमारे दुश्मन नहीं हमारे थातीदार और प्रबंधकर्ता हैं, हमारे मित्र और शिक्षक हैं।

जो हो, अँगरेज़ी राज्य का वर्णन इस पुस्तक के विषय से बाहर है। जिस मुसलमानी राज्य का हम इतिहास लिख

रहे थे, जिसकी वीरता की हमने प्रशंसा की थी, ऐक्य को सराहा था, स्वार्थांधता को धिक्कारा था और क्रूरता की निंदा की थी वे मुसलमान शासक भारतीय रंगभूमि में अपना तमाशा दिखाकर चल बसे। उनके साथ ही साथ यह इतिहास भी समाप्त हुआ लेकिन मुसलमान शासकों के वंशज अब भी हैं। वे हमारे शत्रु होकर आए थे लेकिन भाई बनकर रह गए। निस्संदेह हिंदू और मुसलमान भाई हैं। हम दोनों सगे भाई हैं।

जिसने हमारे मंदिरों को तोड़ा, हमारी ललनाओं का सतीत्व भंग किया, हमारे साथ अनेक और भयंकर अत्याचार किए वे स्वयं मृत्यु के मुख में चले गए, सर्वनाश की गोद में विलीन हो गए। न्यायकारी पिता के सामने उनको अपने कामों का जवाब देना पड़ा होगा। इतना ही नहीं उनको अपने किए का फल भी भोगना पड़ा होगा। क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वांतर्यामी है। उसको धोखा दे देना मनुष्य की शक्ति के बाहर है।

लेकिन उनका पाप उनके साथ गया। पाप और पुण्य किसी जाति के अलग अलग गुण नहीं हैं। पुण्यात्मा और पापी सब में रहते हैं। यदि औरंगज़ेब ने हिंदुओं के मंदिर तोड़कर पाप किए तो ब्राह्मण वंशज नानासाहब ने निरपराध अँगरेज़ स्त्री बच्चों को कटवाकर उससे करोड़ गुना अधिक पाप किया। अनेक मुसलमान बादशाहों

ने हमारी स्त्रियों को अपमानित किया था लेकिन उनसे पहले द्रोणाचार्य और भीष्म के देखते देखते दुःशासन ने महारानी द्रौपदी को नंगा करने का प्रयत्न किया था। पापी लोग सभी जाति में होते हैं। लेकिन अगर सच पूछिए तो वे सब जातियों से बाहर और परे हैं।

अगर मुसलमान शासकों ने अत्याचार किए थे तो उनके वर्तमान वंशजों का क्या अपराध है? क्या वे इस मामले में सर्वथा निरपराध नहीं हैं? क्या वे अब स्थायी रूप से भारतमाता के पुत्र और हमारे सगे भाई नहीं हैं? क्या वे हमारे साथ साथ सब तरह का दुख सुख नहीं भोग रहे हैं? क्या निवर्षण और दुकाल उनको कष्ट नहीं पहुँचा रहे हैं? क्या हमारे साथ साथ वे भी हमसे अधिक प्लग के शिकार नहीं हो रहे हैं? क्या हम लोगों ने एक दूसरे की भली और बुरी बातें नहीं सीख ली हैं?

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि मुसलमानी शासन और मुसलमानों के संसर्ग से हमको हानि ही हानि हुई है। उनके संसर्ग से हमने निस्संदेह बहुत कुछ उदारता सीखी है, बहुत कुछ भ्रातृभाव का पाठ पढ़ा है।

मुसलमानों का धर्म ऐतिहासिक और विदेशी है। उनके मत के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद ने अरब देश में जन्म ग्रहण किया था और उन्होंने वहीं शरीर भी छोड़ा। उनकी क़ब्र भी वहीं बनी है। मुसलमानों में धार्मिक जोश भी बहुत है।

वे धर्म के सामने हर घड़ी अपना प्राण हथेली पर लिए रहते हैं। बात बात में वे अरब का स्वप्न देखते हैं, हर काम में वे अपने मत की पुकार करते हैं। मुसलमानी मज़हब सिकुड़कर क़लमे के अंदर आ गया है। मुसलमानी धर्म में जहां हद दरजे की विचार-संकीर्णता है वहां हद दरजे की आचार-स्वतंत्रता भी है। मुसलमान छुआछूत के बंधनों से सर्वथा विमुक्त हैं। वे किसी का पकाया हुआ, किसी तरह किसी भी साफ़ जगह में बैठकर खा सकते हैं। खाने की चीज़ें भी बहुत कम हैं जिनको वे हराम मानते हैं। जहां वे इसलाम को मुक्ति का एकमात्र द्वार समझते हैं, वहां वे यह मानने को तैयार नहीं हैं कि किसी जाति या वर्ण के लोगों के साथ खाने में वे धर्मच्युत हो जायँगे।

ऐसी विचार-परतंत्र और आचार-स्वतंत्र जाति का साविक़ा पड़ा हिंदू जाति से जिसकी गति इस मामले में बिलकुल उलटी है। विचार में मुसलमान जितने ही परतंत्र हैं, हिंदू उतने ही स्वतंत्र हैं। जहां मुसलमान इसलाम को परमात्मपुरी का एकमात्र पथ मानते हैं, वहां हिंदू प्रत्येक धर्म द्वारा कर्मानुसार मुक्ति मानते हैं। हिंदू प्रत्येक मनुष्य, नहीं नहीं प्रत्येक जीव को परमात्मा का प्यारा मानता है। वह जीवमात्र में परमेश्वर का दर्शन करता है और कभी कभी तो जल और थल में सर्वत्र वह परमपिता का दर्शन करता है।

हिंदू जहां विचार में इतने स्वतंत्र हैं वहां आचार में बहुत ही संकीर्ण हैं। हम वैदिक काल के हिंदू धर्म की बात नहीं करते हैं। यहां मुसलमानी काल के हिंदू धर्म से हमारा मतलब है। आधुनिक हिंदू धर्म के नियमानुसार चारों वर्ण का परस्पर सहभोज्य नहीं है। ब्राह्मण तीन इतर वर्णों का पकाया अन्न ग्रहण नहीं कर सकता है। दाक्षिणी ब्राह्मण के हाथ का भोजन पंचगौड़ भला कैसे करेंगे ? पंचगौड़ों में भी क्या सनाढ्य मांसभोजी कन्नौजियों के घर का अन्न ग्रहण कर सकते हैं ? मांसाहारी ब्राह्मणों में भी क्या कान्यकुब्ज काश्मीरी के घर जूठन गिराने की कृपा कर सकता है ? इतनी दूर क्यों जाते हैं कान्यकुब्जों के अंदर ही षटकुल महाराज धाकर के घर की पूरी भी नहीं ग्रहण करेंगे। षटकुलों में आपस में भी बिला रिश्तेदारी सहभोज्यता नहीं हो सकती है। रिश्तेदार के घर वे भोजन नहीं कर सकते हैं।

आप यह न समझें कि क्षत्री सब ब्राह्मणों का पकाया अन्न खा सकते हैं। कभी नहीं। राजपूत प्राचीन प्रथा के अनुसार केवल अपने प्रोहित का बनाया भोजन ग्रहण करेगा। क्षत्री लोग आपस में भी मीन मेख लगाते हैं। ऊँच नीच के पचासों जीने तै करते हैं। अगर आप सूर्यवंशी हैं तो हम भी चंद्रवंशी हैं। हम आपसे किस बात में कम हैं। अगर आप रामचंद्रजी के वंशज हैं तो हम भी षोडशकला के अवतार भगवान कृष्णचंद्रजी के कुल के हैं।

वैश्यों में भी यही विडंबना है। अगरवालों के मालूम नहीं कितने घर हैं। सब एक से एक बढ़कर हैं। कलवार, कसौधन, कांदू, कसरवानी इत्यादि सैकड़ों जातियां वैश्यों में हैं जिनमें हर एक में पचीसों शाखाएं हैं। इनमें से खाने पीने के मामले में वे अंगद के चरण की तरह अकड़ जाते हैं। ऐसे मामलों में आप शूद्रों को भी किसी तरह कम न समझें। इनमें से कोई जाति दूसरी जाति के हाथ का पकाया भोजन ग्रहण नहीं कर सकती है। इनमें से कुछ जातियां तो ब्राह्मणों को धते बताती हैं। इनमें से जिनको आप सबसे छोटी और अछूत जातियां जानते हैं उनके नियम और उपनियम सुनकर आप चौंक पड़ेंगे। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि चमार बारी के घर का जल भी नहीं ग्रहण कर सकता है। डोमड़ा धोबी के घर का भोजन मृत्यु के डर से भी प्रसन्नता से नहीं कर सकता है।

इतने कठिन नियमों और रीतियों ने हिंदू जाति को जकड़कर बाँध दिया है। उसके हाथ पैर बंधन के कारण एक में एक जकड़ गए हैं। सामने से ललकारते हुए शत्रु को हम ताड़ना कैसे दें, सम्मुख से आते हुए भाई को हम किसके हाथों से पकड़कर गले लगावें, कैसे उसको आलिंगन करें।

जब हिंदुओं में परस्पर इतनी सख़्ती है फिर मुसलमानों के साथ भैयाचारे का बर्ताव कैसे हो सकता था, उनके साथ सहभोजन का प्रश्न कौन उठा सकता था? बंगाल के कुछ

ब्राह्मण मुसलमानी भोजन की गंध से जातिच्युत हो गए। मुसलमानों का स्पर्श किया हुआ जल भी हम नहीं ग्रहण कर सकते हैं। देहातों में मुसलमान और हिंदू साथ साथ एक कूएँ से जल नहीं भर सकते हैं। जो वर्तन मुसलमान से छूजाता है उसको हम आग में जलाते हैं।

अस्तु दो कट्टर जातियों का भरतमिलाप हुआ। दोनों अपनी कट्टरता पर अड़ी रहीं। लेकिन इससे भी बढ़कर अभाग्य की वात यह हुई कि हर एक ने अपने प्रतिवादी की धार्मिक कट्टरता को द्वेष और वैमनस्य समझा। ग़लत फ़हमी दिन दिन बढ़ती गई, दुश्मनी की वुनियाद पड़ गई। मुमकिन था कि अगर हम मिलते और अकसर मिलते तो भेदभाव कम हो ज.ता लेकिन यह भी न होने पाया। पंडित और मौलानों ने हमको नहीं मिलने दिया।

पंडित ने कहा कि सामने दाढ़ीवाला हाजी जो खड़ा है वह म्लेच्छ है, उसकी छाया के स्पर्श से नरकवास होगा। मौलवी ने हमारे मुसलमान भाइयों को बतलाया कि कंठी, माला, जनेऊ और चुटियावाला बिरहमन क़ाफ़िर है। वह क़ाविल रहम नहीं है, हर सूरत में क़ाबिल नफ़रत है।

ये दोनों साहब हमको बहुत गुमराह कर चुके। हम इनके फेर में पड़कर बहुत भटक चुके, भटककर बहुत सदमे उठा चुके, सदमे उठा उठाकर बहुत रो चुके, रो रो-कर बहुत ज़िल्लतें भुगत चुके। अब जाग जाने का समय है, बैठ

जाने का वक्त है, खड़े होजाने की घड़ी है, साथ होकर आगे बढ़ने का मौक़ा है।

हिंदू अब भी ताज़िया पूजते हैं। ज़रूरत है इन्हीं की तरह मुसलमान भी रामलीला मनावें। राम और इमाम जब एक ही मंदिर या मसजिद में पधराए जायँ तब हमारा भैयाचारे का भाव है। हमने मंदिर में घंटा बजाया तो क्या बुरा किया और तुमने मसजिद में आज़ान दे दी तो किसका क्या बिगाड़ा। आओ हम दोनों तरह से ध्यान लगाके और घुटने टेकके, शंख बजाके और उच्चस्वर से पुकारके मातृभूमि के रूप में परमात्मा की पूजा करें। माता की भव्यमूर्ति को अपने हृदय में हम पधरा देंगे, हम मिलकर उसकी पूजा करेंगे। आज इस अवसर पर तुमको भी बुतपरस्ती करनी होगी। भिन्न भिन्न मतों से क्या हानि? हम जब सर्वथा एक हैं तो अलग हमको कौन कर सकता है?

मज़हब नहीं सिखाता आपस में वैर करना।
हिंदोस्तां के हम हैं हिंदोस्तां हमारा॥

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक इस पुस्तकमाला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्शजीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू—१ भाग—लेखक मेहता लज्जारामशर्म्मा।
(५) ,, ,, २ ,, ,,
(६) ,, ,, ३ ,, ,,
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसादशर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी, एल-टी.।
(११) लालचीन—लेखक ब्रजवंदन सहाय।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी. ए.।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।

(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए.।

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।

(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।

(२०) हिंदुस्तान-पहला खंड—लेखक दयाचंद गोयलीय बी. ए.।

(२१) „ -दूसरा „ „ „

(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।

(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी, एल-टी.।

(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए.।

(२५) सुंदरसार-संग्रहकर्ताहरिनारायण पुरोहित बी. ए.।

(२६) जर्मनी का विकास, पहला भाग—लेखक सूर्य-कुमार वर्म्मा।

(२७) „ „ दूसरा „ „ „

(२८) कृषि कौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए-जी.।

(२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम. ए., एल-एल. बी.।

(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास-पहला भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी. ए.।

(३१) „ „ „ „ दूसरा „ „